स्तुति

ॐ नमः षिवाय गुरवै सच्चिदानन्द मूर्तय।

निष्प्रपचांय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ।

कल्याण स्वरूप सर्व के गुरू रूप सच्चिदानन्द मूर्तिमान सर्व का

आत्मा रूप प्रपच्च–रहित शान्त अवलम्ब रहित तेजस्वरूप परामात्मा

को नमस्कार है।

ॐ चित्सदानन्द रूपाय सर्वधी वृत्ति साक्षिणो।

नमो वेदान्त वेद्याय ब्रहाणे नन्तरूपिणी ।

सत्चित आनन्द रूप तथा सर्व बुद्धि की बृत्तियों के साक्षी एवं बेदान्द विद्या द्वारा जानने योग्य, देषकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित ऐऐ ब्रहा को मेरा नमस्कार है।

चैतन्य शाष्वत सदा सर्वत्र रहने वाले नित्य शान्त आकाष से भी आगे सर्वमाल रहित और नादबिन्दु कलाओं से परे सदगुरू को नमस्कार है। परमात्मा ही ज्ञानस्वरूप आत्म है यही परमगुरू है।

सर्वमय ब्रहा को स्मरण करो ।

त्वमेव सर्वज्ञः । त्वमेव सर्व शक्ति । त्वमेव सर्वाधार : ।

त्वमेव सर्वस्वरूपः त्वमेव सर्वेष्वर । त्वमेव सर्व प्रवर्तकः ।

तुम्ही सर्वज्ञा हो तथा तुम्ही सर्व शक्तिमान हो तथा तुम्ही सर्व का आधार हो तुम्ही सर्व स्वरूप हो तथा तुम्ही सर्वेष्वर हों। तुम्ही सर्व के प्रवर्तक हो।

तुम्ही निवर्तक हो तथा तुम्ही सत असत के आत्मा हो। तुम्ही सत असत से विलक्षण हो तथा तुम्ही सर्व नाम रूप्य प्रपंच के अन्तर बाहर व्यापक हो।

ज्ञान में जब दिखा देते हो तुम

बात बिगड़ी बना देते हो तुम

जिसे हम दूर नही कर पाते

दोष मेरा हटा देते हो तुम

बिना तुमसे जो बुझती नही

प्यास ऐसी जगा देते हो तुम

गरूर अपने आप झुक जाता

चोट ऐसी लगा देते हो तुम

मेरी यह बंद आंखे खुल जाती

रोषनी जगमगा देते हो तुम

हम तो भूले स्वयं को तुमको भी

याद अपनी दिला देते हो तुम

पथिक गिरते हुए सम्भल जाता

मंत्र ऐसा सुना देते हो तुम

<u>सन्त संग से विवेक विचार</u>

अविचारः परोमृत्युरविचार हतः जनाः।

विचार हीतना सर्वोपरि मृत्यु हे।

विचारहीन जन नष्ट हो रहे है। विचारापूर्वक चलने से सर्वत्र सफलता मिलती है। अविचार की स्थिति में अकर्तव्य ही कर्तवय मालूम देता है। विचार पूर्वक परिणाम देख कर कर्म करने से अपार संकटो ंसे छुटकारा होता है।

विचार से बुद्धि तीक्षण होती है और परम पद को देखती है क्योकि संसार रूपी रोग की विचार ही उत्तमत औषधि है। विचार से अषुभ का त्याग होता है शुभ का ग्रहण होता है। जो विचार नही कर पाते वे मूर्ख मनुष्य परिणाम में दुख भोगते है।

निर्विवेकोनराधमः । विवेक रहित मनुष्य अधम है। विचार रहित नर कंटकाणीर्ण वृक्ष के समान है।

विचारवान विवेकी मनुष्य शीतलता फैलाता है।

विचार से शोभायमान जीवन्मुक्त पुरूष सब ओर प्रकाषमान होता है। विचार विहीन व्यक्ति ही जगत के पदार्थो को सत्य मानते है। विचारववान विवेकी पुरूष ही जीवन में मुक्ति प्राप्त करके संसार में विचरते है।

विचारवान विवेकी पुरूष दुख रूपी गर्त में नही गिरते । कर्म के परिणाम को न देखने वाला विचारहीन व्यक्ति श्रेष्ठ नही होतो है। विचार रहत होना ही सम्पूर्ण अनर्थो की जड़ है सभी महात्माओं का तिरस्कार है और दुर्दषा की भूमि है, इसलिए विचार को जाग्रत रखना चाहिए।

विचारवान पुरूष ही राग द्वेषादि बिकारों को त्यागकर महात्मा पद प्राप्त करते है।

सत्य को ग्रहण करने के लिए असत्य को त्यागने के लिए बुद्धिमान पुरूषों को विचार श्रेष्ठ और कुछ संसार में नही हैं विवेक विचार से ही आत्मा को तत्व रूप `मं जाना जाता है और इस तत्व ज्ञान से ही आत्मा में विश्रान्ति होती है। इस विश्रान्ति से मन में सर्व वासना का अभाव होने से शानित होती है। शान्ति से ही दूखों को का नाश होता है। (वसिष्ठ)

मोही, लोभी, कामी, अभिमानी अंहकार प्राप्त की रक्षा और अप्राप्त की प्राप्ति का विचार करता है लेकिन दोष्ज्ञो से दुःखों से मुक्त होने का विचार नही करता है।

तन सुखाय पज्जर करे धरे रैन दिन ध्यान।

तुलसी न मिटे वासना बिना विचारे ज्ञान।।

महर्षि वसिष्ठ का वचन है – शास्त्र पढ़ कर यदि सद असद का विवेक नही है तो तो विद्वान, शास्त्र का बोझाा ही ढेर रहा है।

कोई पण्डित विद्वान या बहुत ज्ञानवान माना जाता है लेकिन यदि वह गृहासक्त है मोह, लोभ में लिप्त है तब उसका ज्ञान भार ही समझना चाहिए।

जिसका मन अशानत है उस पुरूष के लिए मन निरन्तर भार रूपन ही रहता है।

जिसे आत्मा का ज्ञान नही है उसे देह भी भार की भॉति ढोनी पड़ती है।

सदग्रन्थो के अध्ययन से तथा विद्वाानों एवं सन्त महात्मा और गुरूदेव के वचनों को सुनते रहने से विचार शक्ति बढ़ती है और विचार शक्ति बढ़ने से शास्त्राध्ययन तथा सन्त सदगुरू के वचनों द्वार सदविवेक होता है।

विचार विवेक के द्वार ाहम अनेक अवसरों पर धन हानि से मान हानि से एवं शक्ति समय के अपव्यय से बच जाते हैं विचार न करने से अथवा विवेक का आदर न करने से शक्ति सम्पत्ति सुयश, सन्मान को खो देते है

लाभ का लोभ और हानि का भय संसार में किसे नही है ? जिसमें पाने का लालच है और खोने का भय है उसे चिन्ता से अशान्ति से तथा दुख से कौन देवता मुक्त कर सकता है ?

किसी प्रकार के लोभ लालच बढ़ता है और लोभ, लालच के रहते कोई देवता से मुक्त नही सुने गये।

असत संग से ही लोभ लालच बढ़त है और लोभ लालच के कारण असत संग चलता ही रहता है।

प्रायः हजारों पुण्यवान नर नारी लोभ के वशीभूत रह कर सतसंग का सहारा ले रहे हैं।

सन्त संग द्वारा ही सबको दुखद अज्ञान का ज्ञान होता है । अज्ञान का ज्ञान होने पर असत संग की सीमा का विवेक होता है विवेक द्वारा ही मोह भेम की निवृत्ति होती है तभी लोभ, लालच तथा भय का अन्त होता है।

संसार में बुद्धिमान करोड़ो है विद्वान भी करोड़ो व्यक्ति है परन्तु विवेकी कोई विरले ही है।

दत्तात्रेय भगवान के वचन है

आत्मा परमात्मा सच्चिदानन्द के बिना कुछ किये ही प्राप्त होती है।

सच्चिदानन्द परमात्मा विकल्पों के कारण व्यक्त नही होता । अनेक प्रकार के ज्ञान को विकल्प कहते है।

आत्मा के अतिरिक्त किसी अन्य का स्फुरण नही रहने से अनेक प्रकार के ज्ञान हट जाते है।

अनेक प्रकार के ज्ञान का त्याग करने पर निर्विकल्प आत्मा उपलब्ध रहता है । उसी स्थिति मेमं यह उदगार घोषित होते है

मैं व्यापक हूं। चिदाकाश हूं। सब मन मुझमें ही हैं मेरा न कोई कर्तव्य है न अकर्तव्य है। मैं पूर्णानन्द हूं।

निर्विकल्प ज्ञान ही अपना स्वरूप है। विशेष कल्पनाओं की निवृत्ति होने पर बोध होता है।

उत्तम अधिकारी को श्रवण मात्र से बोध हो जाता है । मध्यम को मनन निदिध्यासन से हो पाता है । अधम को ऐसा बसेध होने में अनेक जनम लगते है।

ऐसा कोई क्षण नही जब परमात्मा न हो आत्मा न हो धर्म न हो एंव परम शान्ति न हो और परमानन्द न हो परन्तु अधम अधिकारी जड़ बुद्धि के कारण निरन्तर सुलभ को न जान कर भटकते ही रहते है।

बुद्धि की जड़ता के कारण मोह लोभ एवं कामना की पूर्ति के लिए जो भगवान का भगवती का अथवा परमात्मा की शक्ति का सहारा

च ाहते है और परमात्मा को न जानकर जो भटकते है उनका श्रय व्यर्थ नही जाता ।

परम आत्मदेव, पहले तो अपनी दया से ऐसे श्रदालु विश्वासी जनों की कामना पूर्ति के साधन सुलभ करते है और धीरे–धीरे सन्त महात्मा के सत्संग सुयोग द्वारा बुद्धि की जड़ता मिटाते हुए ज्ञान रुपी प्रकाश से अज्ञान रुपी अंधकार मिटाकर सम्यक दर्शन की दिव्य दृष्टि प्रदान करते है

एक सन्त ने समझाया कि परमात्मा से कभी दूरी नही होती।

इसी लिए उसक पता नही चलता। जो निरन्तर है जिसकी शक्ति से जो होना चाहिए वह होता ही रहता है इसीलिए उसका बोध नही रहता यदि परमात्मा भी कुछ समय के लिए हड़ताल कर दे तब सारे संसार को पता चल जाये सो कभी नही होती है।

परमात्मा ही मनुष्य का वह हिस्सा है अथवा ऐसा नित्य योग है जिसे मनुष्य खो ही नही सकता । जो कभी नही खोया जा सकता जो कभी नही छोड़ा जा सकता वही परमात्मा है। सभी आकृतियों में सभी रुपों में जो सत्ता शक्ति के रुप में विद्यमान है जड़ पदार्थो में प्रत्येक कण में एवं क्षण्या में जिसकी सत्ता से गति हो रही है सृजन और विनाश मृत्यु और जनम जिस शक्ति में हो रहे है वही है परमात्मा । परमात्मा के विधान से जब बुद्धि शुद्ध होती है और ज्ञानोदय होता है तभी यह बोध होता है।

यह भी सदगुरू निर्ण यहै

ज्ञान प्राप्ति के लिए साधना की आवश्यकता नही है क्योकि चैतन्य ही तो ज्ञान है वह सदा स्वयं प्रकाश है।

लेकिन अनन्त वासनाओ के कीचड़ में सनी हुई बुद्धि उस स्वयं प्रकाश स्वरूप को समझने में तब तक असमर्थ है जब तक कीचड़ धुल न जाये।

इसीलिए गीता में कहा है कि–

जब तेरी बुद्धि मोह रूप दलदल को पूर्ण रूप से तर जायेगी तब तू वैराग्य को प्राप्त होगा।

जब तेरी बुद्धि अनेक प्रकार के सिद्धान्तों को सुनने से विचलित न रहकर परमात्मा के स्वरूप में अचल और स्थित होकर ठहर जायेगी तब योग की प्राप्ति होगी।

अन्तः करण की शुद्धि के एिल ही साधनों की अर्थात जप तप, ब्रतादि, सतकथा सतचर्चा, श्रवण, मनन एवं निष्काम सेवा , दान स्वाध्याय, ध्यान आदि की अपेक्षा है आवश्यकता है।

आरम्भ में यदि सतशास्त्र एवं गुरू वाक्यों मे दृढ़ आस्था नही है साथ ही गुरु अटूट श्रद्धा नही है एवं परमात्मा के होने में विश्वास नही है और अन्त में प्रभू के प्रति आमीयता के होने में विश्वास नही है और अन्त में प्रभु के प्रति आत्मीयता नही है तब शान्ति , मुक्ति ,

भक्ति तथा परमानन्द की प्राप्त नही होती है क्योकि परमात्मा से जीवात्मा विमुख रहता है।

यह सदगुरू निर्णय हैक।

अपने से भिन्न जो कुछ भी होगा वह असत ही होगा। करोड़ो मनुष्य इतना भी नही समझ पाते। वह इन्द्रियों द्वारा मन से जो प्रतीत होता है उसे ही सत्य मानते हुए दुख भोगते है।

सभी प्रकार के रोगो का घर अशानत मन है और वही दुखों का मूल कारण है। मन के अशानत रहते बड़े अच्छे विद्वानों की बुद्धि भ्रमित रहती है इ सलिए पुण्यवान विरक्त विद्वानों की संगति में रह कर जो वाल्यावस्था से ही सदशास्त्र के तथा सन्तो की संगति में रह कर जो वाल्यावस्था से ही सदशास्त्र के तथा सन्तो के वचन सुनते है वही पापो से अज्ञान से मुक्त हो पाते है।

मन फुरना से रहित कर जिस विधि से भी होय।

नित्य प्राप्त सत आतम परमात्मा का अनुभव कहीं दूर जाने से नही मिलता वह तो सर्वदा स्थित बुद्धि द्वारा मिलता है।

चेतन तत्व दर्पण की भांति है उसी में यह दृश्य भास रहा है । परम चैतन्य को ही तत्वदर्शी महात्मा, परमात्मा का शरीर समझाते है।

दर्पण में प्रतिविम्ब की भांति दृश्य पदार्थ चेतन सत्ता से भिन्न नही है।

संकल्पों से मुक्त होना ही असत से मुक्ति है। संकल्प से मुक्ति में ही शान्ति हैं आनन्द है।

ज्ञान में देखते हो तो अहंभाव के स्रोत को ध्यान में देखो। यदि प्रेम से भरे हो तो सर्वोपरि शक्ति के समर्पित होकर निर्भर और निर्भर होकर शानत रहो।

यह भी गुरू सम्मति है कि (मनोब्रहोत्युपासीत

मन को ब्रहा से उत्पन्न जान कर मन से उतर कर मनोमय ब्रहा की उपासना करों।

गुरू जन आत्मा के स्मरण को ध्यान कहते है और अंहकार के विस्मरण को भक्ति कहते है।

तुम ध्यान करने का प्रयत्न न करो बल्कि जो कुछ भी वर्तमान में है उसे ध्यान से देखो।

यदि तुम अंहकार द्वारा भक्ति के लिए जप, कीर्तन, पूजा , पाठ मन्दिर में दर्शन आदि क्रिया कर्म करते हो तब तो अंहकार भक्ति की साधना का भोगी बनता रहेगा। भक्ति तो तभी पूर्ण होती है जब अंहकार से मुक्ति मिल जाती है।

जब प्रेम में परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ नही रह जाता तभी पूर्ण भक्ति है। जब ज्ञान में आत्मा के अतिरिक्त कुछ नही रहता तभी पूर्ण मुक्ति है।

अन्तः करण तथा कार्योपाधि का अभिमानी ज्ञान स्वरूप चेतन ही जीव बन रहा है । मूल प्रकृति कारणोपाधि तथा विद्योपाधि के अन्तर्गत ज्ञान स्वरूप चेतन ईश्वर होकर विद्यमान है और सभी उपाधियों से बाहर अखण्ड अनन्त चेतन सत्ता ब्रहा तत्व समस्त विश्वात्मक नाम रूप का प्रकाशक है । ऐस तत्वदर्शी जन जानते है।

भगवान का निर्णय है कि नित्य प्राप्त परमात्मा, योग माया से ढका हुआ है इसीलिए मूढ़ मनुष्य जो धन मान, भोग चाहते है वह परमेश्वर को नही जान सकते ।

जो पुण्यवान मानव परमात्मा का योगानुभव करना चाहते है वे शरीर इन्द्रियां तथा मन को वश में रखकर वासना रहि होकर और संगह रहित होकर अकेले एकान्त स्थान में रहते हुए निरन्तर आत्मा को परमात्मा में लगाते है।

तत्वदर्शी ऋषि का निर्णय है कि मोक्ष चाहने वाले पुरूष करोड़ो में कोई–कोई होते है। इन सहस्त्रों मुक्ति चाहने वालो में भी आत्मा के ज्ञानी कोई एक दो मिलते है। इसीलिए आत्मतत्व की चर्चा बहुत कम लोग सुनते है बहुत कम लोग आत्मा के ज्ञान की प्रेरणा देते है और श्रवण करने पर भी एवं आत्मा की चर्चा करते हुए भी कोई बिरले ही आत्मा को जान पाते है।

सत परमात्मा एक ही है।

यदि हिन्दुओं, ईसाइयों का, मुसलमानों का एवं सनातन धर्मी, आर्य समाजी, जैनी, बौद्धों आदि जनो का सत्य भिन्न–भिन्न है तब तो वह अखण्ड सत्य नही कहा जा सकता है।। वह अपनी मान्यताओं एवं स्वीकृतियों पर निर्भर अपनी सुविधा का सत्य कहा जाएगा।

सत्य तो वही है जो अखण्ड हो सर्वत्र हो, सबका हो अभी हो यही हो अपने में ही हो और हम सब अगणित नाम रूपाभिमानी प्राणी उसी एक में ही हो उसी से हम सब जीवन पा रहे हो।

सत् परमात्मा की आखण्डता को कदाचित बुद्धि की जड़तावश कोई नही समझता हो फिर भी उसकी प्रकृति को देखा जाये तो सभी जातियों के शरीर एक ही प्रकार के तत्वों से बने हैं सभी का जीवन एक ही वायु के द्वारा एक ही प्रकार के जल तत्व द्वारा एक ही पृथ्वी में एक ही आकाश में चल रहा है। हिन्दू मुसलमान, ईसाई, यहूदी की वायु जल आदि जीवन पोषक तत्व भिन्न–भिन्न नही है।

अगणित शरीरों में एक ही चेतना से जीवन गतिमान है। सत्य वही है जिसका कभी अभाव न हो।

चेतन का अभाव कभी नही होता । चेतना को पकड़ने वाले अड़ो में परिवर्तन होता है। विद्युत शक्ति सदा रहती है लेकिन से प्रगट करने वाली मशीनों में बल्बों में परिवर्तन एवं टूट फूट होती रहती है।

दूसरों की अपेक्षा बिना जो निरन्तर विद्यमान रहता है वही अखण्ड सत्य ही।

सत्य का अनुभव करने वाले सत्य परमात्मा के प्रेमी ानवान भी उत्तम, मध्यम, अधम तीन प्रकार के होते है।

उत्तम ज्ञानी वही है जो बुद्धि को सत चेतन आत्मा में स्थित करते हुए अखण्ड परमात्मा में आत्मा का अनुभव करते हुए परम तृप्त रहता है।

माध्यम ज्ञानवान उसे कहते है जो बुद्धि योग द्वारा असत् अनित्य देहादिक पदार्थो को ध्यान से देखते हुए नित्य सत्य आत्मा अर्थात चेतन स्वरूप के ज्ञान में अहंकार से मुक्त होकर आत्मा और ब्रहा की एकता का अनुभव दृढ़ करता है। निकृष्ट ज्ञानी वह है जो प्राप्त शक्ति, योग्यता आदि के द्वारा निष्काम भव से सेवा करते हुए दोषो से मुक्त होकर प्रेम को परमात्मामय पाकर अभय हो जाता है।

विकास होते होते एक ऐसा केन्द्र जाग्रत होता है जाहं से परमात्मा का सम्यक बोध होता है , लेकिन असत संग के प्रभाव से वह सुप्त पड़ा रहता है। असत संग के त्याग से वह जाग्रह होता है।

असत संग के त्याक करते –करते जो नित्य प्रापत सत परम तत्व है उसका अनुभव, शान्त मौन होकर प्रज्ञा के स्थित होने पर सुगम होता है।

जो प्राप्त शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता का भोग में दुरूपयोग करता है वह असत संगी हैं जो प्राप्त का निष्काम रह कर सेवा में सदुपयोग करता है वही असत संग का त्यागी है।

यह सदगुरू उपदेश है कि तुम चित से जो भी आये या जाये उसे केवल देखते रहो तभी साक्षी भाव से स्थित होने से असंगता आयेगी।

असत संग का त्याग होने पर प्रत्येक क्रिया को दृष्टा रहकर देखना सहज होगा।

जितना ही ज्ञान में जागे रह कर खाने पीने उठते बैठने को देखते रहोगे उतना ही असत से असंग रहोगे। गीता में स्थित प्रज्ञ के लक्षणों में इसी का संकते है।

ममता और आसक्ति

हमें समझाया गया है कि अंहकार प्रीत पूर्वक जिसे अपना मान लेता है उसी से ममता हो जाती है। जिससे ममता होती है उसी से कामना पूर्ति की आशा रही है और कामना पूर्ति से जो सुख की प्रतीति होती है वही आसक्त बना देती है । ममता, कामना, आसक्ति भेद, संधर्ष, कलह, क्रोध नही मिटेगा।

व्यक्ति के प्रति आसक्ति से मोह बढ़ता है । वस्तु के प्रति आसक्ति से लोभ बढ़ता है विषय स्पर्श जनित सुखासक्ति से काम प्रबल होता है । ज्ञान में यह दोष दीखते है।

इन्द्रियों द्वारा जो कुछ सत्य मान लिया जाता है उसी में असाक्ति दृढ़ जाती है। जब तक दुख की कृपा नही होती तब तक विद्वान ज्ञानी, उपदेशक वस्तु व्यक्ति की आसक्ति तो बहुत लम्बी अवधि के पश्चात छोड़ेगे पहले साधारण किसी व्यसन की आसक्ति छोड़ना कठिन होत है। जब किसी विषय में आसक्ति प्रबल होती है तब वह शक्ति एवं प्रीति के अधिक से अधिक भाग को समेट लेती है। तब मनुष्य मान लेता है कि मैं एक के अतिरिक्त और सभी से विरक्त हूं। त्यागी हूं परन्तु ऐसा मानना भ्रम है।

हृदय की प्रीति मन में उतर कर इन्द्रिय द्वार से विषयाकर बन जाती है उसे ही आसक्ति कहते है।

जब आसक्ति इन्द्रिय मन से पीछे लौट कर हृदय में पवित्र भावाकार हो जाती है तब उसे प्रीति कहते है। प्रीति में देते रहना सहज होता है आसक्ति में लेते रहने की आदत बन जाती है।

मन के द्वारा सुखासक्ति के कारण नाम रूपमय अनित्य आकार का ही संयोग है वियोग है निराकार में बुद्धि स्थिर करो तो आनन्द ही आनन्द है। लेकिन अज्ञान में यह संभव नही है । तुम बुद्धि को चेतन स्वरूप में स्थिर होकर आनन्द का अनुभव करो।

तुम्हें संसार में धन, मान, यश प्रतिष्ठा का सुखोपभोग चाहिए तो प्रीति पूर्वक सेवा करो दान करो दूसरों को बिना बदला लिए मान दो प्यार दो और जिससे किसी को दुख न हो ऐसा अधिकारी दो । जो

दोगे वही मिलेगा। प्राप्त शक्ति तथा सम्पत्ति एवं योग्यता का सेवा में उपयोग न करोगे तो व्यर्थ ही सब कुछ बोझ बनेगा।

प्रीतिपूर्वक निष्काम सेवा द्वारा पुण्य सच्चित होने पर प्रभु कृपा का अनुभव होता है तभी बुद्धि शुद्ध होती हैं। शुद्ध बुद्धि होने पर ही सुखासक्ति छूटती है और तभी निज स्वरूप में छिपे हुए अपार आनन्द की अनुभूति होती है।

तप में, त्याग में साधना में ध्यानाभ्यास में गुणोपासना में किसी न किसी प्रकार की सुखासक्ति ही बाधक बनती है।

सुखासक्ति असंयमी बनाती है। देहासक्ति आलसी बनाती है धनासक्ति लोभी बनाती है व्यक्ति के प्रति आसक्ति मोही बनाती है। सेवा द्वारा ही वस्तु व्यक्ति की आसक्ति छूटती है । ममता से ही आसक्ति बढ़ती है और आसक्ति ही भिखारी बनाती है आसक्ति का परिणाम जान लेने पर इस दोष को कोई धर्मपरायण विद्वान ही छोड़ पाता है। आसक्ति न छोड़ पाना अधर्मपूर्वक भोग की सूचना है।

हमें यह भी समझाया गया कि जहां लाखों मनुष्य श्रद्धा विश्वासपूर्वक भगवान का स्मरण, कीर्तन, पाठ पूजा, ध्यान नही करते उनके मत से विरूद्ध तुम बहुत कुछ साधना तथा भजन करते हो जिन पापों से बचना चाहिए और पुण्यों को बढ़ाना चाहिए उसके लिए तुम सावधान नही हो सकें। अब हो जाओं और सब अनर्थो का मूल राग द्वेष, मिथ्याभिमान, दम्भ तथा मोह, ममता, आसक्ति को छोड़ो। यदि

यह दोष बने रहेंगे तो घर परिवार धन, भूमि आदि के त्याग देने पर सन्यासी बन जाने पर भी शन्ति मुक्ति भक्ति नही मिलेगी।

तुम जिसका सदुपयोग करोगे उसी की दासता से मुक्त हो सकेगे और जिसका भोग में दुरूपयोग करोगे उसी के दास बने रहोगे।

मोह सदा उसी से होता है जो विनाशी है । जो निरन्तर बदल रहा है, छुट जायेगा उसी के पीछे सारी दुनिया दौड़ रही है केवल ज्ञानवान ही ठहरा हुआ है।

तुम अपना कुछ मानो ही नही ं । सब प्रकार की ममता को छोड़ने पर ही चाह का अन्त होता है। चाह रहित होने पर अहंकार गलता है। अंहकार के रहने तक ममता, आसक्ति कामना नही मिट्ती ।

आत्मा को जान लेने पर फिर शास्त्र वेद पढ़ने की आवश्यकता नही रहती ।

ममता से मुक्ति होने के लिए श्रवण, मनन, अध्ययन, सन्तसंग विचार अभ्यास, जपादि साधनों की आवश्यकता रहती है।

द्वे पदे बन्धमोक्षाय निर्ममति ममेति च।

मोक्ष के लिए नियम पूर्वक महात्मा भी अंह ब्रहा इस प्रकार का अभ्यास करें। ममता रहने तक बन्धन रहता है, ममता से मुक्त होने पर मोक्ष हो जाता है।

विनाशी नाम रूपों को अविनाशी प्रीति में रख कर अपना मानने से ममता होती है यही ममता हानि रहित होने पर वियोग होने पर अत्यधिक दुख देती है और ममता न रहने पर शान्ति सुलभ रहती है। इसीलिए ज्ञानी जन मन से ममता का त्याग करते है।

विनाशी नाम रूप में प्रीति पूर्वक ममता रहने तक वेद शास्त्र के ज्ञाता पण्डित तथा तपस्वी वेरागी, त्यागी सन्यासी महात्मा कहलाने वाले पूज्यास्पद गुरूजन भी शोक, दुख अशान्ति से मुक्त नही हो पाते ।

जब तक मृत्यु का भय है, देह में आसक्ति है, वाह् सत्ता का बोझ है, व्यर्थ धन संचय की वासना है सांसारिक अधिकारों की लिप्सा हैं मिथ्या बड़प्पन का दर्प है ओछापन है स्तुति से हर्ष है, निन्दा से घबराहट होती है तब तक अद्धेत ज्ञान अंह ब्रहास्मि कथन से अंहकार की ही तृप्ति होती है लेकिन कभी न कभी इस प्रकार कहते कहते अंहकार से मुक्ति भी मिल सकती है।

अद्धेत ज्ञान का परिचय सत्यमय प्रेम से मिलता है।

सन्त ने बताया कि तुम ज्ञान ही हो तुम स्वयं प्रेम ही हो परन्तु जिस वस्तु को या शब्द स्पर्श रसादि विषय से तुम मिल जाते हो उसी मय बन जाते हो और अपने को वही मानने लगते हो, अपने ज्ञान स्वरूप को प्रेम स्वरूप को भूल जाते हो , यही अपनी स्वतंत्रता का दुरूपयोग है।

धन, तन भूमि, भवन आदि के प्रति प्रेम ही भयातुर चिन्तित बनाता है इसीलिए असत संग रहते मुक्ति नही मिलती ।

भगवान की बात मान लो तो अभी से फलाशा का त्याग करके तुम कर्म को होते हुए देखो। फलाशा के त्याग से भय चिन्ता से मुक्ति मिल जाती है।

प्रेम ही अंह की अर्थात तुम्हारी आत्मा है । तुम प्रेम ही हो बार–बार याद करो, प्रेम के रूप में तुम विश्वव्यापी आत्मा हो।

जो मानते हो उसे जान लो

जो करोड़ो नर नारी नही सुनते जहां करोड़ो नर नारी नही आते जो वाक्य, जो ज्ञान विज्ञान जो आत्मानुभव की चर्चा करोड़ो नर नारी नही पढ़ते सुनते तथा जो श्रद्धा करोड़ो नर नारियों में जाग्रत नही हो पाती है वह सभी विशेषताएं सच्चित पुण्य प्रताप से और प्रभु कृपा से तुममे देखी जा रही है तुम्हें सन्त संग भी सुलभी है श्रद्धा भी जाग्रत है सत्वर्चा सुनने की भी उत्सुकता है बार–बार आने की रूचि है। तब तो सावधान होकर जो साधना, जो त्याग, जो तप, जो सेवा जो दान या जो समर्पण कभी करोगें वह शीघ्रतातिशीघ्र अभी करें लेकिन सावधान रहना मन से मान कर कुछ न करना बल्कि गुरू ज्ञान में जानकर करना । परम गुरू भगवान के वचन है।

अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।

सदा सर्वगत सर्व उर जानि करेहु अति प्रेम ।

यहां मान कर प्रेम करने को नहीं कहा प्रत्युत जान कर करने का उपदेश दिया है। मन से माना जाता है। बुद्धि से जाना जाता है।

मन निरन्तर संसार से सम्बन्धित है और संसार के आकारों को लेकर अंहकार मन पर बैठा हुआ है, इस प्रकार यह मनोमय अंहकार ही योग बोध और प्रेम की पूर्णता में बाधक बना रहता है इसलिए गुरोपासना द्वारा अंह को आकारों से मुक्त करों। आकारों से मुक्त होने के लिए अर्थात जिसे तुम मेरा मानते हो उसे छोड़ने में ही त्याग, तप दान पूर्ण हो जाता है। जो कि बाहर से नही किया जाता भीतर से हो जाता है।

सुख का मूल विचार है दुःख मूल अविचार ।

यह भाष्यों संक्षेप में चार वेद का सार।

विद्वान पुरूष जागरूकता को अथवा सावधान रहकर प्रत्येक गति विधि के परिणाम को देखने की सजगता को विचार कहते है।

भगवान ने समझाया है कि तुम अभी तक जो कुछ मन से मान रहे हो उसे बुद्धि द्वारा ज्ञान, विवेक, विचार के सहारे जान लो। तुम देह को अपना स्वरूप न मानते रहो। अब नित्य रहने वाले अविनाशी चेतन

स्वरूप आत्मा को समझ लो। इन्द्रियों के संयोग से जो सुख दुख प्रतीत होता है इसे सत्य समझ कर पराधीन न बने रहों।

सावधान होकर देखोगें तो समझ मे आ जायेगा कि अनुकूलता का सुख सदा नही रहता और प्रतिकूलता का दुख भी सदा नही रहता इसलिए ज्ञानवान धीर पुरूष सुख दुख को देखते हुए अपने चेतन स्वरूप में समस्थित रहते है । अज्ञानी मूढ़ लोग विचलित हो जाते है।

जब तुम सुख दुख की सीमा को देखते हुए यह समझ लोगे कि यह सुख भी सदा न रहेगा और दुख भी सदा न रहेगा तभी तुम स्वस्थ रहते हुए मोक्ष के अधिकारी हो जाओगें।

जब तक सुख का लालच और दुख का भय रहता है तब तक साधक ज्ञान में सावधान नही है वह भगवान को मानता ही नही है।

तुम विचार करो और विवेकवती बुद्धि से देखो तो समझ में आयेगा कि सुख तुमने मान लिया है सत्य नही है । दुख भी सुख मानने के कारण होता है अतः दुख भी सत्य नही है । सुख का भोक्ता मनोमय अंहकार है यह भी सत्य नही है अंहकार के पीछे नित्य रहने वाला ज्ञान स्वरूप चेतन ही नित्य निरन्तर है यह सत् है।

जब तक तुम अपने आपको सुनकर मानते ही रहोगे जब तक आत्म अज्ञान के रहते तुम जो कुछ भी पूजा, पाठ जप, तप, व्रतादि साधना करोगे इससे अहंकार ही प्रसन्न होता रहेगा परन्तु तुम भय से चिन्ता से दुख से मुक्ति का आनन्द नही पा सकोगे।

तुम किसी भी ज्ञानी की तथा त्यागी की या भक्त की या मुक्त की कथा पढ़ते सुनते रहो परन्तु अपने ही ज्ञान से बन्धन की जान लेने पर मुक्ति का आनन्द सुलभ होगा।

तुम्हें अपने ही प्रेम से नित्य प्राप्त सत्य की अभिन्नता की बोध होने पर भक्ति सुलभ होगी। तुम्हें अपने ही द्वारा सर्व संग त्याग से अथवा सर्व दोषो से परम शान्ति का अनुभव होगा। तुम स्वतंत्र होकर स्वाधीन रहने पर शान्ति का अनुभव होगा। तुम स्वतंत्र होकर स्वाधीन रहने पर शान्ति मुक्ति भक्ति का अनुभव करोगे।

गुरूदेव सावधान करते है कि अरे तुम भगवान को मानते हो मन्दिरों में दर्शन करने जाते हो और अपने मन की ही बात कहते रहते हो अब अपने ऊपर कृपा करो और जो भगवान कह चुके है उसे समझने को तत्पर हो जाओ।

भगवान का ही यह निर्णय है – श्रद्धावान ही सुनने, समझने के लिए तत्पर होता है, श्रद्धावान ही आंख, कान, वाणी तथा रसना आदि इन्द्रियों को संयत रखता है, वश में रखता है इसीलिए श्रद्धावान ही ज्ञान को प्राप्त होता है। उस ज्ञान द्वारा ही भय तथा चिन्ता एवं आशन्ति और दुख का सदा के लिए अन्त हो जाता है।

भगवान ने बता दिया है कि अस्तित्व नही है वही असत है और ऐसा क्या है जो सदैव एक समान रहता है। कभी जिसका अभाव नही है जो बदलते रहने वाले दृश्य पदार्थो को देखता रहता है। जो कुछ भी

दृश्य दीखता है वही असत है मिथ्या और जो ज्ञान स्वरूप देखता है वही सत है उसी को चेतन स्वरूप आत्मा कहते है। इस अविनाशी का कभी नाश नही होता।

आत्मा स्वप्रकाशित है। पदार्थ दूसरे द्वारा प्रकाशित है। अभी देखो शरीर, इन्द्रियां, मन बुद्धि, अंहकार के पीछे चेतन स्वप्रकाशित है यही आत्मा है।

अनेक साधक सुख के पीछे भागते हुए जब यह गुरू वाक्य सुनते है कि जो सुख मिलेगा वो रहेगा नही जो वस्तु व्यक्ति, अवस्था परिस्थिति सुखद प्रतीत होगी और अन्त में न चाहते हुए भी सुख के पीछे दुख भोगना पड़ेगा । जीवन में जो कुछ भी मिलेगा वह मृत्यु आने पर सब छूट जायेगा। इसलिए संसाद में सुख पाने का और बचाने का प्रयत्न व्यर्थ ही है। ऐसी बातें सुन करके श्रद्धालु जन प्रश्न करते है कि तब क्या करें ? इसका उत्तर भी प्रायः यही मिलता है कि भजन करो त्याग करो, तप करो, सत्संग करो, तीर्थ यात्रा करो, देव दर्शन करों। यह सुनकर सहस्त्रों साधक अपनी मान्यतानुसार करते ही रहते है। फिर भी भय, चिन्ता अशान्ति और दुख का अन्त नही होता । यह देखकर फिर प्रश्न करते है कि क्यो करें? प्रायः साधक यह नही पूछता कि ‘‘क्या न करें ’’?

यह गुरू निर्णय है कि संसार में कुछ चाहते हो तब कुछ किए बिना चैन नही है और यदि परमात्मा की प्यास है तब कुछ न कुछ करना ही सरलतम उपाय है।

तुम विद्यमान होकर भी खाल से लिपटे हुए अस्थि, मांस के ढांचे को ध्यान से देखते हुए देह से तथा झूठी सुन्दरता से अनासक्त रह कर उसे जानो जो सबको जानता है सबको देखता है।

लाखों नर नारी मनुष्य की बनाई गई भगवान की मूर्ति को ध्यान से देखना चाहते है लेकिन प्रकृति से निर्मित मूर्ति देह को भीतर बाहर से देखने में ध्यान नही देते ।

देह की स्मृति में आत्मा का विस्मरण और जगत दृश्य के स्मरण में परमात्मा का विस्मरण हो रहा है इस भ्रम से मुक्त हो जाओ।

अज्ञान में मानने का अभ्यास हो गया है वह ज्ञान में देखने का अभ्यास दृढ़ करो। मानने से राग, जानने से विराग होता हैं यह अंहकार सबसे पहले अज्ञान में जो आंखो से देखता है, कानो से सुनता है, वही मन से मान लेता है। जब कभी ज्ञान में बुद्धि से जानता है तभी देखता है कि अपना कुछ भी नही है।

तुम्हारे जन्म के पहिले सोना, चांदरी, हीरे, मोती, भूमि, भवन थे ही न तुम्हारे रहने पर भी धरती में सब कुछ रहेगा तुम व्यर्थ ही अपनी सम्पदा मान कर लोभी, मोही, अभिमानी न बनो।

अंहकारमय जीवन की समस्त यात्रा में सत्य आत्मा की विमुखता है।

अंहकार ही मोही, लोभी महत्वाकांक्षी सुखी दुखी है।

संसार की सहायता से दुख कदापित नही मिटते।

अज्ञान में सुख दुख मान लिया जाता है, ज्ञान में तुम आनन्द को जान लो। परमात्मा ही आनन्द स्वरूा है जीवन सुख स्वरूप है अपने चेतन स्वरूप में आनन्द को।

अज्ञान में शब्द सुनते–सुनते असत्य भर गया है वह ज्ञानी के शब्द सुनते–सुनते निकलेगा।

तुमने जो सुना और स्वीकार कर लिया है तुम स्वयं ही अंहकृतियों, परिस्थितियों से घिरे हो और तुम्हीं उनमें प्रगट होते हो। जितना भीतर जाओगे और ध्यान से देखोगे तब जानोगे कि तुम यह कुछ भी नही हो।

हृदय में परमात्मा है परन्तु अहंकार बर्फ की सिली की तरह इसे ढके हुए है।

यदि तुमने वेदान्ती के द्वारा ब्रहाम्ज्ञान सुनकर जप, पाठ, पूजा, कीर्तन आदि का व्यर्थ मानते हो और लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, मोहादि विकारों को व्यर्थ मानकर निर्विकार नही होते तो इस ब्रम्हा ज्ञान से अंहकार ही पुष्ट होता रहेगा।

अज्ञान में अंहकार मन के साथ शब्द स्पर्श, रूप, रसादि, का भोगी बना रहता है । ज्ञान में बुद्धि युक्त होकर प्रत्येक विषय स्पर्श को तथा दृश्य को देंखते हुए ज्ञानवान अविनाशी असंगचेतन आत्मा में स्थित रहता है।

तुम देहवान, बलवान, धनवान, रूपवान, गुणवान आदि न बने रहकर आत्मवान होकर आनन्द का अनुभव करो। आनन्द तुम्हारे का अनुभव करो। आनन्द तुम्हारे भीतर ही है बाहर किसी को नही मिलता ।

अपने आपको शुद्ध चेतन्य स्वरूप निश्चय करो। तुम अंहकृतियों को साक्षी रहकर देखो।

अहंकार ही विनाशी से सम्बन्धित रह कर सुखी दुखी बनता रहता है। ज्ञान में दृष्टा ही अंहकार से मुक्त होता है।

तुम प्रयत्न एवं पुण्य कर्म से संसार में जो कुछ भी प्राप्त करोगे वह मृत्यु में छूट ही जाएगा। तुम मन से जप, कीर्तन पूजन, पाठ, यज्ञादि शुभ करते हुए जब तक ममता, आसक्ति का त्याग न करोगे तब तक दुख नही मिटेगा।

अंहकार ही राम से विमुख काम में है। ब्रम्हा से विमुख माया में है। प्रकाश ज्ञान से विमुख अन्धकार में, अज्ञान में है। आत्मा से विमुख देह में है। परमात्मा से विमुख होकर संसार में है। नित्य चेतन से विमुख रह कर जड़ में आबद्ध है। यही हृदय ग्रन्थि है।

जिस तरह प्रकाश में नेत्रों द्वारा देखा जाता है, अन्धकार में किसी भी वस्तु को पकड़ा जाता है उसी तरह ज्ञान में बुद्धि दृष्टि द्वारा देखा जाता है और अज्ञान में मन से ग्रहण किया जाता है माना जाता है।

जब तक तुम अपने को और अपने साथ प्रारब्धानुसार मिलने वाले पदार्थो को तथा सम्बन्धी जनों को अपना मानते हो इसी प्रकार जब तक तुम कर्तव्य को धर्म को ईश्वर को एवं भजन को अथवा आराधना उपासना अथवा किसी प्रकार की साधना को मानकर कुछ कर रहे हो तब तक अज्ञान है।

अज्ञान में कुछ वस्तुओं को प्रीति पूर्वक अपनी मानने के कारण ही तुम मोही हो तथा भूमि, भवन धन आदि सम्पदा को अपने अधिकार में मानकर लोभी बन रहे हो। अपने को श्रेष्ठ मानकर अभिमानी बन रहे हो, या हीन, तुच्छ, नीच मान कर दीन बन रहे हो।

ज्ञान में देखो तब ज्ञात होगा कि अज्ञानियों से मोही, लोभी, अभिमानी जनों से सुन–सुन कर जो कुछ तुमने अपने को मान रहे हो वह तुम नही हो। तुम विनाशी जड़ देह नही हो तुम कोई जाति वर्ण नही हो और जिसे भी तुम अपना मान रहे हो यह कुछ भी तुम्हारा नही है, तुम्हारा स्वतंत्र अधिकार नही है।

जो कुछ भी जीवन में संसार की वस्तु मिलती है वह संसार में ही छूट जाती है।

ज्ञान में देखो? यह देह संसार की है लेकिन तुम संसार के नही हो, तुम परमात्मा के हो परमात्मा में ही हो, तुम्हारे चेतन स्वरूप का जन्म नही होता और मृत्यु भी नही होती । तुम अविनाशी हो, नित्य हो, देह विनाशी है अनित्य है।

ज्ञान में न देखने के कारण मन से देह को तथा देह से सम्बन्धित जनों को एवं भूमि, भवन, धन आदि को अपना मान लिए हो।

अपने ज्ञान स्वरूप को तुमने अज्ञान में अपना माने हुए विनाशी पदार्थो से भर लिया है जब ज्ञान में देखो और ज्ञान स्वरूप को प्रत्येक विनाशी वस्तुओं से मुक्त कर लो।

तुम्हें अपनी भूल पर भ्रान्ति पर आश्चर्य होना चाहिए कि अज्ञान वश तुम समर्थ नित्य दाता प्रभु से न जाने क्या मांगते हो और बिना मांगे ही ऐसा देही मिली है, आंख, कान, रसना आदि अदभुत चमत्कार से पूर्ण इन्द्रियां मिली है कितना शक्ति सम्पन्न मन मिला है कैसी अदभुत दृष्टि मिली है इस दान को देखते नही हो।

भगवान को मानने वाले भगवान के सदुपदेश को तभी मानते है जब भगवान के प्रेमी भक्त होते है जो अपने तन के लिए ही वस्तु व्यक्ति को चाहते है वह भगवान को तो मानते है पर भगवान के उपदेश निर्देश को नही मानते ।

तुम पुण्य प्रताप से सन्त को माने हो तो सन्त के वचनों को भी मानों यदि तुम्हारी गुरूदेव से श्रद्धा है तो गुरू की आज्ञानुसार साधना को निर्दोष बना लो, निष्काम बना लो।

सन्त सदगुरू के उपदेश वही मानते है जिनके हृदय में श्रद्धा जाग्रत हो रही है। श्रद्धा उसी हृदय से जाग्रत होती है जब आत्मादेव की कृपा होती है। आत्मदेव की कृपा तभी दीखती है जब निष्काम पुण्य सच्चित होते है। निष्काम पुण्य तभी सच्चित होते है जब सेवा करते हुए सेवा के बदले में कोई कामना पूर्ति का पक्ष नही होता।

सकाम सेवा, दान पुण्य का फल संसार से मिला करता है और निष्काम सेवा, दान पुण्य के बदले में जो मिलता है वह भगवान की ओर से मिलता है। भगवान से दैवी सम्पदा मिलती है जो मोक्ष का साधन बनती है। संसार से जो सम्पदा मिलती है वह भोग, बन्धन में डालती है।

अच्छे पुण्यवान श्रद्धालु जन श्रद्धा के द्वारा आत्मा ज्ञान प्राप्त करते है । मन्द पुण्यवान श्रद्धालु विनाशी वस्तु में अटके रहते है वह देहोपासक बनते है आत्म देवोपासक नही होते ।

बहुत छोटा सा गुरू वाक्य बहुत बड़ी भूल को प्रगट कर रहा है वह यही कि जब तक जो कुछ हम मानते है यही अज्ञान है। अपने को ज्ञानी तथा अज्ञानी मान लेना भी अज्ञान में ही है। हम ज्ञानी होना चाहते है, यह भी झूठे अंहकार की चाह है।

सदगुरू ने समझाया है कि ज्ञान तो तुम्हारा स्वभाव है यह ढक गया है। चैतन्य तुम्हारा नित्य स्वभाव है यह जड़ता से दब गया है।

तुम अपने माने हुए आकारों से अंसग होकर अपने निराकार रूप में बुद्धि को स्थिर करो तब तुम जानोगे कि तुम्ही ज्ञान स्वरूप नित्य सत्य हो।

मन नही बल्कि प्रज्ञा द्वारा अनुभव में आता है अंहकार के बाहर भीतर सब ओर परमात्मा ही है। तरंग के बाहर भीतर सागर ही हैं परमात्मा को कहीं जाकर पाना नही है उसे कही से आना नही है, परमात्मा तो है ही परन्तु अहं के आकारों से एवं अपने माने हुए साथी सामान से अथवा अह कृतियों से प्रज्ञा की हुई हैं इसीलिए परमात्मा अनहुआ सा लगता है।

भ्रमित बुद्धि द्वारा यही निर्णय होता है कि परमात्मा ऐसा वैसा करने से मिलेगा परन्तु करने से जो कुछ भी मिलता है वह मायाकार आने जाने वाले होता है।

वह पढ़ सुनकर अहंकार यह सोचेगा कि अब हमें कुछ नही करना है परन्तु अहंकार कुछ किये बिना रह नही सकता ।

यह अहंकार साध न ा में अथवा जप, तप, त्याग, भजन में अपनी सारी शक्ति लगाकर जब अशक्त होता है, जब कुछ बचता ही नही तभी उसका बोध होता है जो करने के प्रथम तथा करने के मध्य में और करने के अनत में निरन्तर विद्यमान है।

हमें यह भी समझने के लिए सावधान किया गया कि तुम अपने ज्ञान में जो कुछ भी रख लोगे उसी से सम्बन्ध जुड़ जायेगा और अभी जुड़ा हुआ है इसीलिए तुम देहाभिमानी रूपाभिमानी, कुलाभिमानी, धनाभिमानी, तयागभिमानी, विद्याभिमानी, रूपाभिमानी, शास्त्रार्थभिमानी, जप, कीर्तन, पाठ पूजा तथा नित्य प्रार्थना नियम संयम के अभिमानी एवं कर्माभिमानी धर्माभिमानी आदि जो कुछ भी बने हो वह संगाभिमान के कारण ही बने हो।

अब यदि तुम नित्य चेतन आत्मा को और अखण्ड अनन्त ब्रम्हा को आत्मीयता पूर्वक स्वीकार कर लेते हो तब वही उसी मय अपने को पाओगे । झूठमय बन चुके हो अब सत्यमय हो जाओ अभी से संकल्प कर लो।

यह भी गुरू वचन सुननें में आया कि तुम जो कुछ भी बनते आ रहे हो वह हुए कभी नही। हो तुम वही के वही जो तुम सदा से थे।

किसी मद में नशे में जब तक कोई अपने को नही पहचान रहा तब तक वह दूसरे को कैसे पहिचानेगा । वह जो कुछ बोलेगा वह झूठ से ही सम्बन्धित होगा।

यह आत्मा की स्वतंत्रता है कि अपने को जब तक चाहे परतंत्र बनो रहे और जब चाहे तब स्वतंत्र हो जाये।

बहुत पुरानी बात है बाल्यकाल की बात है मेरे गुरूदेव ने ध्यान योग से मेरे जीवन साधना का भविष्य देखा और अपने निकटस्थ

भक्त को बताया कि यह सांसारिक वासना, कामना, महत्वाकांक्षा में पड़ेगा लेकिन जब चाहेगा तब निकल जायेगा गुरूदेव की कही बहुत पुरानी बात अब समझ में आ रही है।

आत्मा स्वंतत्रता के कारण परतंत्र है । जब चाहे तभी किसी को अपने को भूल जाये और जब चाहे अपने को या किसी को याद कर ले। आत्मा की स्वतंत्रता है कि यह वासना बद्ध और मुक्त दोनो हो सकती है। भगवान ने कहा है कि जो अजितेन्द्रिय है वह अपना शुत्र है जो जितेन्द्रिय है वह अपा मित्र है। चाहे तो अपना उद्धार करे या उद्योगति में चला जाए।

हम अनेक साधक किसी सिद्धि–सफलता के लोभवश जो अन्त करण की शुद्धि के साधन पाठ, पूजा, जब कीर्तन या आसन प्राणायाम तप व्रतादि है उन्हीं में अटके हुए है।

अहंकार किस प्रकार साधन और साधना की भोगी बना हुआ है यह देख नही पाते । अंहकार जो कुछ भी जप पाठ, संकीर्तन तथा कथा प्रवचन करता है उसके पीछे कभी धन चाहता है कभी मान चाहता है कभी नाम चाहता है इस चाह के कारण अंहकारी आत्मा, परमात्मा, भगवान से विमुख होकर जगत के ही सन्मुख रहते है परन्तु अहंकार को इस भ्रम का ज्ञान नही होता ।

यह अहंकार शिष्य बन कर गुरू के संग का भोगी बनता है और भक्त बन कर भगवान से सम्बन्धित भाव का भोगी बना रहता है भाव से नित्य योगी नही हो पाता ।

अहंकार जो भी सुनता है उसे बिना विचारे स्वीकार कर लेता है क्योकि सुनने के लिए मन आरम्भ से ही जाग्रत है बुद्धि का विकास तो धीरे–धीरे होता है और प्रज्ञा तो अनेक जन्मों तक आच्छादित ही रहती है।

बहुत लम्बी यात्रा में कमी यह भी ज्ञात होता है कि हमारी अशान्ति तथा हमारे जीवन में तमाम प्रयत्न को व्यर्थ बना देने वाला दुख हमारी झूठी मान्यताओं के कारण है। हम जो नही है और जो हमारा नही है उसे ही हम और हमारा मान रहे है।

परम प्रभु की कृपा से सुसंस्कार से प्रेरित होकर हम जब सत कथा सुनते है आध्यात्मिक प्रवचन सुनते है तब अभिलाषा जाग्रत होती है कि मुक्ति भक्ति शान्ति मिल जाये परन्तु मूढ़ता वश अपने बनाये हुए बन्धनों को नही समझ पाते बल्कि जिन वस्तुओं व्यक्तियों की ममता में बंधे है उनकी सुरक्षा चाहते हुए हम मुक्ति की इच्छ्ज्ञ करते है।

हमें समझाया गया है कि विषय सेवन विषवत है लेकिन त्याग में संयम में अमृत है । क्रोध विष है, क्षमा अमृत है। कुटिलता विष है सरलता अमृत है। क्रूरता कठोरता हिसा विष है दया करूणा मधुरता

अहिंसा प्रेम अमृत है। असंतोष विष है सन्तोष अमृत हैं देहाभिमान विष है। आत्मज्ञान अमृत है। असत् संग विष है सत संग अमृत है।

हम अंहकार वश विष को छोड़ते नही है और अमृत का लालच करते है इसीलिए साधना के नाम पर जो कुछ करते है वह सब अहेंकार विषाक्त बना देता है।

ज्ञान में ही दीखता है अहंकार विषय सेवन में व्यस्त है। तब भी अमृतकर्ता के भीतर मौजूद है। यह अमृत अंहकार के कुछ करने से नही मिलता ।

सरल साधना है अभी अभी अह आकारों को छोड़ कर तना छोड़कर सहज भाव से चैतन्य विश्राम का स्मरण करो तुम निरन्तर परमात्मा में ही हो, परमात्मा के ही हो बस केवल यही स्मरण करों।

अज्ञान में तुम देहमय जातियम, अनेकमय बन रहे हो अब देहादि से अपने को भिन्न जानकर आत्मा को परमात्मामय स्मरण करों। अभी यही तुम विनाशी के संग से मुक्त हो और अविनाशी परमात्मा से युक्त हो।

जगत दृश्य को पांच तत्वों को तथा तत्वों से बनी देह की मन को चित्त के चिन्तन के साक्षी होकर देखो। साक्षिगण चिद्रूप बिद्धि ।

साक्षी होकर देखने से असंगता होगी वैराग्य होगा मुक्ति होगी जिसे भी देखोगे उसका सम्यक ज्ञान होगा मन की मान्यता में न अटके रहो।

धर्म, अधर्म, सुख, दुख, मेरा तेरा आदिसब मन के मान लेने से साथ लगे है।

दृश्य पर विश्वास न करों जीवन का नित्य श्रोत सत परमात्मा है उसी पर विश्वास करों। किसी के तन पर मन पर इन्द्रियों पर बुद्धि पर अंहकार पर विश्वास करोगे तो धोखा ही होगा, लाखों को हो चुका है।

तुम सावधान हो जाओ केवल सतचेतन पर विश्वास करो।

एकसन्त ने बहुत यथार्थ बात समझाई है इसे पढ़ने सुनने वाले समझे और स्मरण रक्खे ।

सन्त ने बताया कि तुमसे अधिक मूल्यवान और कुछ भ्छी नही है। तुम सदा से ही अपने पास हो इसलिए तुम अपने को याद नही रख पाते

यह भी सावधान होकर देखा लेना तुम्हारे अंहकार से अधिक झूठ और दुखद भी तुम्हारे निकट दूसरा कोई नही है फिर भी इस अंहकार को पहचान लेना दुष्कर हो रहा है।

अपने को और अपने अति निकटस्थ को न देखकर तुम उसे देखते हो जो दूर है और उसे पाना चाहते हो।

अब सावधान होकर देखते रहना कि जिस शक्ति को सम्पत्ति को जिस वस्तु को या व्यक्ति को, जिस स्वास्थ्य के जिस सुन्दरता को अथवा सुन्दर प्रतीत होने वाले वस्त्रों को आभूषण को अथवा सामान को जब तुम पा लोगे तब वैसा ही न रहेगा जैसा न मिलने पर दीखता था।

जो कुछ तुम्हारे साथ है वह भूला रहता है जो नही है या नही मिला है उसका स्मरण आता रहता है।

ऐसा कभी नही हो सकेगा न हुआ है कि तुम न रहो और यह भी न हो सकेगा कि जो तुम्हें मिलेगा वह सदा बना रहे इस सत्य निर्णय के अच्छी तरह समझ लो विचार कर लो।

यदि तुम सदा शान्त, स्वस्थ, निश्चित, निभर्य रहना चाहते हो तो अपने आपको स्मरण रखने के लिए सावधान रहो। जो तुम्हें नही मिला है उसकी कामना न करो। जब मिल हुए सम्बन्धी साथी जनों में कोई न रहे तब उसकी याद हटाकर जो अभी है उन्हें ही स्मरण करो उन्हें ही देखा और ख़ुशी मनाओ कि अभी जो भी साथ है वही बहुत है और तैयार रहो कि वे भी सब छूट जायेगें । जिसका भी संयोग हुआ है उसका वियोग अवश्य ही होगा।

जिसका नित्य योग है वह चेतनस्वरूप परमात्मा ही है।

अच्छे विद्वान विदुषी माता पिता कदाचित जाने वाले एक पुत्र के लिए अति शोकाकुल होते है और रहने वाले पुत्रों को तथा प्रियजनों को देखकर सन्तुष्ट नही होते ।

तुम्हारी बुद्धि ठीक ही है तो जो कुछ छूट जाये समझ लो कि दैवी विधान से इसे जाना ही था।

तुम्हारे साथ जो शक्ति सम्पत्ति है उसके द्वारा तुम उनकी सेवा करते रहो जो तुमसे सम्बन्धित प्राणी है। तुम उसकी भी सेवा तथा यथाशक्ति सहायता करते रहो जो अचानक तुम्हारे सामने आ जाता है क्योकि उसका भी कुछ हिस्सा है। तभी तो आया है जिसका हिस्सा नही रहा वही चला गया है और जिसे अभी लेना है भोगना है वही साथ है। इस ज्ञान का आदर करो तब तुम शोक विलाप अशान्ति से मुक्त रह सकते हो। ज्ञान के अनादार से मनुष्य की बहुत दुर्दशा होती है।

परमगुरू भगवान का निर्णय है कि ज्ञान के द्वारा मानव पाप सागर को पारकर जाता है। ज्ञान के समान पवित्र करने में समर्थ अन्य कुछ नही है। ज्ञान निरन्तर प्रकाश की भांति विद्यमान है। अंहकार ही प्रकाश से विमुख है।

हर एक व्यक्ति दूसरो के चेहरे को देखता है परन्तु अपने चेहरे को कुछ क्षण देखता है और प्रायः देखता ही नही। आपको अपने चारो ओर लोभी अभिमानी ईर्ष्यालु क्रोधी हिंसक अधमर्मी दीखते होंगे पर आपके भीतर जो दोष है वह कभी या अभी दीख जाते तो कितना

शुभ होता ....मनुष्य अपने पापों से प्रतिकूलता का दुख भोगता है अपने ही दोषों से अशांत होता हैं अपने ही द्वारा आग जलाकर ईर्ष्या द्वेष क्रोधादि से स्वयं को तपाये हुए दूसरो को सन्तापित करके पाप राशि को बढ़ाता है।

तन के द्वारा की गयी सेवा के फल से मनुष्य को शारीरिक सुविधाऐं सुलभ होती है। वस्तुओं, अथवा धन, भूमि, भवन के दान से वही सब सुख सुलभ होता है। पुण्य से प्राप्त शक्ति सम्पत्ति के द्वारा जितना अधिक अहंकार अनुकूलता का सुख भोगता है उतने ही पुण्य घटते है । पुण्य न रहने पर प्रतिकूलताएं बढ़ती है । प्रतिकूलताओं के भोग से पाप कटते है।

आप किसी की तो सुन कर मानते ही है। लोभी, मोही, अभिमानी अज्ञानी की सुनकर मानने वाले लाखों व्यक्ति है। लेकिन निर्लोभी निर्मोही निरभिमानी की मानने वाले कोई बिरले ही परमार्थी है।

आपने अपने मन की मानी लेकिन सतसंग के द्वारा सुलभ विवेक की कहां तक मानी है। होय विवेक मो भ्रम भागा । आप ने किसी साथी की मानी है। जब किसी साधु सन्त के ज्ञान का आदर करो जिससे दया क्षमा उदारता दान करने की शक्ति बढ़ सके ईर्ष्या द्वेष कलह क्रोध निन्दा घृणा के वशीभूत न होकर सदा शान्त सहिष्णु प्रसन्न रह सको।

प्रीति की प्रबलता में गुण ही गुण दीखते है दोष दुर्गुण नही दीखते। प्रीति में जो कुछ होता है वह पुण्य ही होता है द्वेष में जो कुछ बनता है वह पाप ही बनता है।

स्वार्थी लोभी अभिमानी कामना से भरे हृदय की सेवा भी भोग का ही साधन बनती है।

प्रीति में जो वस्तु अपनी प्रतीत होती है उसी से आसक्ति ममता हो जाती है यहीं से पराधीनता परतंत्रता बढ़ती जाती है। जन्म लेते ही जीव प्रायः उन्हीं की सुनता है जो परतंत्र है पराधीन है। वृद्धावस्था से जैसे-जैसे वस्तुओं व्यक्तियों से सम्बन्ध बढ़ते जाते है वैसे ही वैसे परतंत्रता पराधीनता बढ़ती जाती है। जो कुछ या जिसे भी अपना मान लिया जाता है उसी की आधीनता में मोही, लोभी, अभिमानी बनता जाता है।

सन्त ने हमें समझाया है कि जब तक मन के द्वारा कुछ भी मेरा प्रतीत होता है तब तक यह मैं लोभ मोहादि दोषो से नहीं छूट सकता है। ऊपर से मेरा कहते हुए भीतर से अपना कुछ भी न दीखे, केवल परमात्मा ही अपना है - इस निश्चय की दृढ़ता से मन निर्विकार हो सकता है।

समता ही निर्विकार मन का परिचय देती है।

विषमता से बचने के लिए न किसी की स्तुति करो न ही निन्दा करों। जब तुम्हारी कोई स्तुति या निन्दा करे तब मौन शान्त रहो।

पाप को देखो नही । देख लो तो कहों नही ।

किसी के पाप का मनन कदापि न करो। किसी का पाप सुनों भी नही।

यदि ईश्वर के ध्यान में दृढ़ता नही आती तो प्रभु से ही कहो परन्तु संसार के नाम रूप का ध्यान न करो, मनन न करो। तत्परता के साथ प्रभु का नाम स्मरण करते रहो।

ध्यान में भगवान की छबि अथवा रूप तुम्हें दिखाई नहीं देता तब तुम हठ न करों लेकिन भगवान के जो दिव्य गुण है, जो भगवान के सारे धर्म है उन्हें अपने में उतारने दो अर्थात दया उदारता, क्षमा, सहिष्णुता, शील सन्तोष, प्रेम, करूणा, वैराग्य आदि गुणाों को कर्म क्षेत्र में प्रकाशित होने दो तब लोग देखेगें कि तुमसे भगवान का अवतार हो गया।

मानते मानते मनुष्य धर्म को गुरू को भगवान को अपना मान लेता है । अपने से भिन्न जो कुछ भी अपना माना जाता है वही स्वतंत्र स्वाधीनता में बाधक बनता है। स्वयं से भिन्न जो कुछ भी है वह अखण्ड सत परम तत्व नही है।

असत संगी देह के मोही होते है इसीलिए सम्बन्ध विच्छेद होने पर दुखी होते है लेकिन जो अपने को सत्संगी मानते है गुरू पर श्रद्धा राते है परन्तु जब सम्बद्ध विच्छेद होने पर रोते है तब समझना चाहिए वह भी असत संगी जनों की भांति देह के ही पुजारी है इसलिए शरीर

न रहने पर उन्हें क्षति प्रतीत होती है जो स्वयं देह का अभिमान नही छोड़ पाते वही गुरू की देह में असाक्ति रखते है और देह में ही अटके रहते है इसी को मूढ़ता कहा गया है।

संन्त का संग मिलने पर भी यर्थाथ विवेक के लिए बौद्धिक क्षमता की अपेक्षा रहा कती है । क्षमता बिना सत्य का अनुभव नही होता ।

जिससे लोभ मोह अभिमान बढ़ा है वही असत् अनित्य है सत के संग से ही लोभी मोह आदि विचार मिट्ते है।

वह असत संगी है जो धन मान भाग संयोग चाहता है ऊपर से चाहे जितना सम्पन्न वैभव युक्त हो पर भीतर तो दरिद्र ही है भिखारी ही है।

गुरू वाक्य

जब किसी से ममता नही होगी तभी प्रभु में आत्मीयता होती है। आत्मा में आत्मीयता दृढ़ होने पर अंहिसा पूर्ण होती है।

त्यागने योग्य को जानो

नत्यक्चा सुख माप्रोति नात्यक्चा विन्दते परम्

नात्यक्चाभयः शेते त्यक्त्वा सर्व सुखीभव

त्याग के बिना सुख नही त्याग के बिना परमात्मा नही मिलता । त्याग बिना निर्भय सो नही सकता । इसलिए तुम त्याग द्वारा सुखी हो जाओं ।

परमात्मा के अतिरिक्त जो कुछ दिखाई देता है उसका मनन, स्मरण चिन्तन असत संग है इसी का त्याग करों।

जो कुछ भी दिखाई दे उसे परमात्मा का ही जान कर उसीमय परमात्मा को नमस्कार करों। जहां तुम हो वही सत्य परमात्मा है तुम निरन्तर परमात्मा के लिए उपस्थित रहो। महत्वाकांक्षा के रहते शान्त रहना असम्भव है।

महत्वकांक्षा का त्याग करते ही शान्ति आ जाती है, जेसे पर्दा हट्ते ही प्रकाश आ जाता है। महत्वाकांक्षा असत् संग है।

किसी भी चाह की अपूर्ति से अशान्त होना ससत् संग है। जब तुम अशांन्त हो तब अज्ञान में होते हो तब दूसरो कोई शान्ति नही दे सकता है।

कामी को क्रोधी को लोभी को अहंकारोन्मत को परिणाम नही दीखता क्योकि यह सब अंधे के समान है। असतसङ्र्.ी है।

गुरू ज्ञान में हमें दिखाया गया है कि अज्ञान में सर्वप्रथम देह को अपनी मानने से अहं ज्ञान देहाकार बन गया है यही से असत संग का आरम्भ होता है और यहीं से असत संग के त्याग का भी आरम्भ

होना चाहिए। इसीलिए सदगुरू का उपदेश है कि इस देह को अभी तक इन्द्रिय दृष्टि से देखते आयो हो अब इसे बुद्धि दृष्टि से ज्ञान प्रकाश में देखो तब यह देह और सभी सम्बन्धियों की देह में कुछ हडियां मज्जा, मांस से लिप्टी हुई नाड़ियां से बांधी हुई, रक्तादि सेभरी हुई और (त्वचा) खस से मढ़ी हुई दीखेगी, इसलिए इस हाड. मांस की देह को मैनं मानना छोड़ दो यह पहला असतसंग का त्याग है यह प्रथम मुक्ति है इसके आगे सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त होना सरल होगा।

देहाभिमान सभी बन्धनों का मूल है।

इसके आगे जो परिवार के माता पिता स्त्री, पुत्रादि सम्बन्धी है इन्हें भी अपना न मानो। देहके द्वारा देहों के प्रति कर्तव्य कर्म पूरे होने दो परन्तु ममता, फलाशा न रहने दो। यह दूसरा असत संग का त्याग है।

जो कुछ तुम्हें दृश्य दीख रहा हैं इसे बुद्धि दृष्टि से क्षण क्षण बदलता हुए समझो और किसी भी वस्तु से राग न करो क्योकि जो कुछ भी दीखता है यह सदा न रहेगा इस प्रकार के दृढ़ निश्चय से वैराग्य दृढ़ होगा तभी भगवान के प्रति अनुराग होगा अथवा भक्ति दृढ़ होगी।

भगवान की भक्ति को ही सर्वोपरि धर्म समझो। परमात्मा को ही एकमात्र परमाश्रय समझों । संसार के सभी सहारे झूठे है उनके प्रति आसक्ति छोड़ दो यह तीसरे स्तर का त्याग है।

लौकिक धर्म अनेक है सत्य धर्म एक ही है जो सारे विश्व को धारण कर रहा है उसे जानो वही पूर्ण धर्ममय है।

कुसंग को छोड़ कर सन्त साधु का संग करो। भोग सुख की कामना का त्याग करो । यह चौथे स्तर का त्याग है।

बहुत ही सावधान रहकर किसी गुण को सदगुण सम्पन्न मान कर और किसी को दोषी मान कर उसके गुणों, की चर्चा का त्याग करते रहो । किसी के गुण एवं दोषो का विचारह ही न आने दो। एकमात्र सत्चर्चा, सत्कथामृत का सेवन करते रहो।

पराये गुण दोषो की चर्चा का त्याग पांचवा त्याग है।

सदगुरू ने समझाया है।

यदि तुम साधक, शिष्य हो तो संघर्ष न करो अपने को बदलो। शत्रु से लड़ने से शत्रु की तरह होना पड़ता है। क्रोध जब निष्क्रिय होत है तब ईर्ष्या के रूप में प्रगट होता हैं सक्रिय ईर्ष्या से भीतर छिपा हुआ क्रोध प्रगट होता है।

जहां कही तुम क्रोध में लोभ में ईर्ष्या, द्वेष कलह में निन्दा घृणा में शक्ति को लगाते हो वहीतम अपने शत्रु हो।

अभी तो इतना ही समझ लो कि जब तुम अपना ही हित नही साध पाये तब दूसरों के हित में कैसे ठहर सकते हो।

अब पता लगा कि अनेक बार तुम्हें उस वायु पर क्रोध आता है जब अचानक तुम्हारे सामान या कागजात वायाु के झांके से बिखर जाते है या द्वार ही खुल जाता है खिड़की खुल जाती है।

अग जलाते हुए बार-बार फूकने पर जब नही जलती तब आग पर लकड़ी पर क्रोध आ जात है कौवा बार-बार बोलता है तो उसी पर क्रोध आता है। सर में दरवाजा लग जाता है अथवा कोई भी अचानक प्रतिकूल क्रिया से हानि हो जाती तब उसी समय मुख से कटु वाक्य निकल जाते है । एकान्त में जड़ पदार्थो को दी हुई गाली भी कर्म बन जाती है। यद्यपि उस समय कोई प्रत्युक्त नही मिलता । जब कभी गुप्त रूप से तुम्हारे मन में बुरे कम्पन उठते है तब अच्छे कम्पन की धारा रुक जाती है बुराई जाग्रत हो जाती है।

आत्मा अनात्मा को चेतन और जड़ को क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को पृथक-पृथक समझ लेना ज्ञान है। इस ज्ञान के लिए सेवा का व्रत लेकर प्रतिकूलताओं को सहन करना चाहिए। इस सहिष्णुता से तपस्या होगी। तप से अन्तः करण की शुद्धि होगी इसके लिए काम क्रोध लोभ मोहादि छिद्रो को बन्द रखना आवश्यक होगा क्योकि इन्ही छिद्रों से शक्ति बहती रहती है।

एकान्त सेवन, अल्पहार, मौन निराशा, संयम प्राणायाम, इन छे उपायों से आत्म प्रसाद प्राप्त होता है। आत्मा में ही प्रीति दृढ़ हो आत्मा में ही सनतुष्टि हो तृप्ति हो इसके लिए बुद्धि में अनासति का

प्रबल पक्ष होना चाहि मन पर विजय प्राप्त करना चाहिए और इच्छाओं को त्याग देना चाहिए।

मन, बुद्धि देह से सम्बन्ध रखते हुए अनासक्ति नही होती है मुक्ति का अभिलाषी ही अनासक्त हो सकता है।

जब तक देह में या किसी भी वस्तु, व्यक्ति में राग रहेगा तब तक परामात्मा में अनुराग नही होगा। भक्ति का प्रेमी ही राग का त्याग कर सकेगा।

किसी के शब्दों से अपना अपमान समझ कर दुखी होना असत संग है इसीलिए कटु शब्दों का प्रयोग करने वाले अंहकार की दुर्बलता से निकले हुए वाक्यों को अस्वीकार कर दो। कह दो मुझे यह शब्द नही चाहिए यही असत संग का त्याग है । लेकिन मान कीर चाह की त्यागी नही होने देगी।

जहां तक जब तक तुम आत्मा को भूल कर देह का ही अपने लिए उपयोग करते हो, देह की चिन्ता करते हो भविष्य में देह को सुरक्षित रखना चाहते हो यही तो असत संगह है।

देह के रहते हुए देह का क्षण क्षण बदलते हुए जानकर देह को अपनी न मानना ही असत संग का त्याग है।

अपने से भिन्न वस्तु व्यक्ति संयोग से सन्तुष्ट होना असत संग है।

प्रत्येक वस्तु को तथा व्यक्तियों को या संयोग को मिथ्या असत जानकर चेतन आत्मा में ही सन्तुष्ट रहना असत संग का त्याग है।

अज्ञान अविवेक में असत संग चलता रहा है ज्ञान में विवेक में असत संग का त्याग हो जाता है।

जो अपने से भिन्न है उससे प्रीति होना जो अपने से दूर है कभी मिलेगा और छुट जायगा उसकी याद आते रहना उसका चिन्तन करना उसके लिए व्याकुल होना असत संग है।

जो अपने से भिन्न हो नही सकता जो अभी है सदा से है सदा रहेगा उसके अतिरिक्त अन्य सब कुछ को अपना न मानना ही असत संग का त्याग है।

एक सन्त कह रहे थे कि –

सत्य परमात्मा उसे नही कहते जो कभी हो अभी न हो जो कहीं पर हो पर यहीं न हो । जो सर्वत्र हो पर यहां न हो जो सभी का हो, पर अपना न हो । जो अद्वितीय हो और सर्व समर्थ न हो जो किसी पर कृपा दया करता हो परन्तु मुझ पर न करता हो। परमात्मा को इस ज्ञान के विपरीत मानना असत संग है। इस प्रकार विपरीत भावना का त्याग ही असत संग का त्याग है।

ज्ञान का तथा त्याग का तप का दान का या किसी भी नियमित साधना का परिचय देना अभिमानी होना असत संग है। सब कुछ

परमेश्वर ही अथवा आत्मदेव की कृपा से होते देखना असत संग का त्याग है।

अपने ऊपर विशेष कृपा समझाना दूसरों पर ऐसी नही है – ऐसा मानना भी असत संग है, अविवेक के कारण है।

हमें समझाया गया है कि जिस अज्ञान में तुम शरीर, सौन्दर्य या इन्द्रियों द्वारा प्रतीत होने वाले सुख से सम्मोहित होते हो यह असत संग है। इस प्रकार के असत संग द्वारा सबमें विद्यमान महोदव का परमात्मदेव का अपमान है इसी अपराध के कारण असत संगी को दुख भोगना पड़ता है।

असत संग के कारण बढ़ते रहने वाले मोह, लाभ अभिमान काम क्रोधादि विकारो से मुक्त होने के लिए तुम ज्ञान में जाग्रत रह कर सभी प्राणियों में (यहां तक सावधान रहो कि) शत्रु में भीतुम आत्मदेव का स्मरण करो और मन ही मन नमस्कार करों उस वस्तु को अपनी मानो ही नही जिसकी हानि हो सकती हैं तथा जो छीनी जा सकती है। तुम उसे ही जान लो जो आत्मतत्व जो परमात्मा न छीना जा सकता है न छोड़ा जा सकता है वही तुम स्वयं हो। इस ज्ञान से ही भय चिन्ता अशान्ति दुख का सदा के लिए अन्त हासे जायेगा कब ? जब ज्ञान के अनुसार असत के रागी मन का ही त्याग होगा तब। त्याग सरल होगा जब सत परमात्मा में ही प्रेम स्थिर होगा।

इन गुरू वाक्यों के पढ़ने या सुनने वालो को यह स्मरण रखना चाहिए कि असत का त्याग उसी से होगा जिसे मुक्ति चाहिए।

जिसे शरीर की सुरक्षा चाहिए, सुखी रहने के लिए मन की अनुकूलता अर्थात इच्छाओं की पूर्ति चाहिये तथा कष्टों की निवृत्ति चाहिये। जिसे महत्वकाक्षां की पूर्ति के लिए धन चाहिए, पदाधिकार चाहिए सुन्दर भवन तथा सुन्दर रूप एवं सुन्दर पति पत्नी का अनुकूल संयोग और इच्छित भोग चाहिए। उन्हें तो प्राप्त शक्ति तथा योग्यता के द्वारा पुण्यवानों विद्वानों की संगति में रहकर अधिक से अधिक पुण्यों को बढ़ाना चाहिए और अपराधों पाप कर्मो से बचते रहना चाहिए। परन्तु कोई हजारों में एक साधक तत्पर होगा।

पाप कर्म से अथवा अपराधों से बचने के लिए परिणाम को समझने वाली सूक्ष्म बुद्धि चाहिए और ऐसी बुद्धि जाग्रत करने के लिए धर्मशास्त्र के विद्वान आचार्य के प्रति अथवा विरक्त सन्त महात्माओं के प्रति श्रद्धा दृढ़ होनी चाहिए।

जो कुछ भी सुन्दर, सुखद प्रतीत होता है वह किस क्रम से मिलते ही व्यर्थ हो जाता है यह न देख पाना असत संग है। प्रेम को प्रभुमय होने के लिए समर्पण का सासह नही असत संग का प्रभाव है।

आत्मा के रूप में परमात्मा को सभी प्राणियों में न पहिचान कर जो प्रतिमा में ही पूजन करते रहते है और सांसारिक कामनाओ की पूर्ति चाहते है वे असत संगी है। यह भगवान में लिखा है।

जो दूसरे जीवों को दुख देता है और बहुत धन खर्च करके मन्दिर में पूजा श्रृंगार करता है वह असत संगी है इसीलिए ऐसा पुजारियों को भय, चिन्ता अशान्ति दुख से मुक्ति नही मिलती ।

राम भक्ति मणि उर बस जाके।

दुख लवलेश न सपनेहु ताके।

असत संग के रहते भक्ति नही और भक्त तभी, जब असत संग का त्याग हो जाये, असत संगी भक्ति के साधन को ही भी मान लेते है, यह भ्रम गुरू ज्ञान से दूर होता है।

गुरू ज्ञान में हमें यह भी समझाया गया है कि चित्त के निरोध में योग नही है। चित्त वृत्ति के निरोध में योग है। चितत से उत कर चित्त वृत्तियों को दृष्टा हो कर देखो। अहंकार ही कर्ता भोक्त बनता है।

यह भी देखो कि अनुकूल परिस्थितियों में जो सरसत उदारतापूर्वक सेवा से आती है वही सरसता प्रतिकूल परिस्थिति कामनाओं के त्याग से आ जाती है अतः असत संग से उत्पन्न कामनाओं का त्याग करों।

यह भी समझ लो कि कामना पूर्ति के पश्चात तुम उसी स्थिति में लौटागे जिस स्थिति में तुम कामना उत्पत्ति के पूर्व थे।

परमात्मा परमानन्द निरन्तर प्राप्त हैं तुम अप्राप्त के पीछे भाग कर समय खोना बन्द कर दो। तुमने जो असत संग को स्वीकार कर लिया है। जो अपना नही है उसे अपना मान लिया है। उसे अस्वीकार कर दो। अभी देखों समझों कि यह कुछ भी मैं नही हूं यहां कुछ भी मेरा नही है। सब कुछ परमात्मा का है, परमात्मा में ही है। परमात्मा ही सर्वमय है। अर्थात परमात्मा ही प्रकृतिमय है।

यदि तुम प्रकृति के अनुकूल आहार विहार संयम नियम तथा विचार विवेक पूर्वक प्राप्त शक्ति सम्पत्ति योग्यता का विधिवत् उपयोग सदुपयोग करते हो तब जो कुछ व्यर्थ है उसका स्वतः त्याग और सार्थक है उसका भोग भी स्वतः होता रहता है।

तुम अन्न जल ग्रहण करते हो तब उसमें जिनता अंश आवश्यक है वह स्वतः ही पच जाता है ओर जो अनवाश्यक है वह मल मूत्रादि के रूप में स्वतः निकल जाता है।

जो स्वतः निकलाता है वह यदि तुम्हें प्रिय नही है तब उसे दूसरों को कदापि न देना कोई प्राणी स्वतः ग्रहण कर ले तब उसे मना भी नही करना।

कदाचित कभी क्रोधादि विकार स्वतः ही निकल पड़े तब इन बिकारों को किसी अन्य पर न डालना और दूसरो कोई इन विकारों को मूर्खता वश डालना चाहे तो स्वीकार न करना, मन को हटा लेना।

स्वतः प्रकट होने वाले सदगुणों को अथवा शुभ सुन्दर भावों विचारों को केोई लेना चाहे तो उसके दाता न बनना। प्रत्येक भोग को और त्याग को देखते रहना।

त्यागः प्रपज्वरूपस्य चिदात्मत्वव लोकनात।

त्यागो हि महता पूज्नः सद्यो मोक्ष प्रदायकः

चैतन्य तत्व का साक्षात्कार करके जो नाम रूप प्रपंच का त्याग होता है वही वास्तविक त्याग है। इस त्याग का महात्मा जन बहुत आदर करते है और यह त्याग शीघ्र ही मोक्षदायी है।

निवृत्त रागस्य गृह तपदोवंन । चित्त का रंग जाना ही राग है। किसी भी वस्तु व्यक्ति से जब हम प्रीति के रंग देते है तभी वह प्रिय प्रतीत होती है फिर हम उसी को मन से गति रहते है यही राग बन जाता है।

कही भी राग न रहने पर गृह ही तपोवन की भांति हो जाता है। राग का त्याग ही मुक्ति का द्वार बन जाता है।

यस्तु कर्म फल त्यागी सः त्यागीत्यभिधीयते ।

जो कर्म करते हुए भी फलाकांक्षा नही रखता वही त्यागी अपने को स्वाधीन पाता है।

किसी को कोई उपदेश देकर त्यागी नही बना पाता लेकिन ज्ञान में जो दुख के कारण को भली भांति जान लेता है वह दुख ही त्याग

बना देता है। जिसका प्रेम परम सत्य परमात्मा में स्थित हो जाता है उसमें अनायास ही असत का त्याग ही जाता है।

गुरू–वाक्य

जिस प्रकार पाषाण में मूर्ति व्यापक है

पुष्प में गन्ध, फलों में स्वाद व्यापक है।

उसी भांति सब में परमात्मा व्यापक है– इसे समझना चाहिए।

अनेक धर्म मानते हुए एक धर्म को

जान लो

परम गुरू भगवान के उपदेश के अन्त में निर्णय दिया है भोगी, मोही, लोभी, अभिमानी अहंकार को अनेक पदार्थो अथवा वस्तुओं, व्यक्तियों का आश्रय लेना पड़ता है और जितने भी पदार्थ है, जितनी भी वस्तु है, उनका अपना –अपना धर्म है धर्म हीन वस्तु निस्सार है।

अग्नि यदि धर्म रहित हो जाये तो राख रह जाती है।

इसी प्रकार देह धर्म मन बुद्धि, चित्त अहंकार आदि सबका अपना–अपना धर्म है।

विनाशी पदार्थो का धर्म अविनाशी नहीं है अविनाशी तत्व का धर्म नित्य सत्य होता है।

जो नित्य जीवन चाहता हो, या आनन्द चाहता हो जो नित्य सत्य का योग चाहता हो उसके लिए परम गुरू का निर्णय है कि सर्व धर्मो को छोड़ कर जो एक है अद्वितीय है अखण्ड अनन्त है उसे ही जान कर उसी की शरण लो।

सर्वधार्मानपरियित्यज्य मामेक शरण ब्रज।

भगवान अपना पता भी बता चुके है कि मैं सभी में आत्मा नित्य चेतन तत्व रूप से सभी का आश्रय हूं।

वेदव्यास का निर्णय है कि भगवान ब्रम्हा ने वेदों का तीन बार अध्ययन किया और बहुत गम्भीर बुद्धि द्वारा यही निष्कर्ष निकाला कि जिससे कूटस्थ परमात्मा के प्रति अनन्य (पूर्ण) प्रेम प्राप्त हो अर्थात प्रेम परमात्मा मय हो जाये बही श्रेष्ठ धर्म है।

अहकार आसक्ति, ममता, कामना करते हुए भगवद भाव से सेवा, भजन ही जीव का स्वधर्म है।

असत संग के प्रभाव से मुक्त रहने के लिए सनत की संगति से असत का त्याग करना मानव का स्वधर्म है। साधना के द्वारा नित्य प्राप्त परमात्मा से अभिन्न होने की अनुभूति रूप भक्ति ही साधक का स्वधर्म है।

अज्ञानी जन धन मान भोग की प्राप्ति के लिए माने हुए धर्म कर्म को आचारण में लाते है।

ज्ञान में जाग्रत विद्वान साधक मुक्ति भक्ति के लिए धर्माचरण करते है।

धर्माचारण से आसक्ति मिट्ती है। केवल धर्मोपदेश करने व सुनने मात्र से असाक्ति नहीं मिट्ती ।

ममता आसक्ति के रहते निष्काम सेवा पूर्ण नही हो पाती क्योकि मोहासक्त व्यक्ति अंहकार की तृप्ति के लिए ही सेवा आदि शुभ कर्म करता है।

तन धन जन मान भोगादि के संयोग जनित सुख से विरक्त एंव आसक्त होना है तो धर्माचारण का पक्ष लो। अज्ञान में अन्धे सुखासक्त अंहकारी व्यक्ति धार्मिक नही होते ।

अंहकार सदा धर्म के विपरीत भोगासक्त होता है। अहंकारी व्यक्ति के सच्चित पुण्य भोग में नष्ट होते रहते है। पुण्य की पूंजी समाप्त होने पर प्रतिकूलताओं को तन और मन के द्वारा भोगते हुए अहंकार की अशान्त भयातुर चिन्तित रहता है।

अहंकार अपनी रक्षा के लिये अधर्माचरण का आश्रय लेता अहंकार धर्म की रक्षा कर ही नही सकता फिर भी धर्म रक्षा के नाम पर घोर हिसंक बनता है।

वास्तव में सत्य धर्म उसे समझना जो सबको धारणा करते हुए शाश्वत शान्पित की दिशा में सबको आमंत्रित करता रहता है। जिस धर्म

के पीछे तेरा मेरा भेद हैं वह सत्य धर्म नही है, वह तो मनुष्यों के अहंकार ने अपने सुभीते के लिए मान लिया है। धर्म की सीमाएं नही है नाम रूप की संकीर्णताएं नही है।

वास्तविक धर्म तत्व का ज्ञाता धनी होने पर भी निर्लोभी होता है, पदाधिकारी होने पर निरभिमानी होता है। विद्वान वेदवेत्ता ज्ञानी होकर पूर्ण विनम्र होता है श्रद्धा उदारता करूणा आदि दैवी सम्पदा से सम्पन्न होता है इसीलिए परोपकारी होता है।

जो कभी पशुमय होता है वही धर्म की शरण लेकर प्रभुमय हो जाता है।

धर्मात्मा पुरूष पदस्थ होकर भोगी न बनकर विनम्र सरल सेवा परायण होता है वह देहस्थ न होकर आत्मस्थ स्वस्थ होता है।

जो धर्मानुसार भोग का पक्षपाती है वह दूसरों के काम आने के एिल सावधान रहता है। जो अधर्म पूर्वक भोेगी है वह दूसरों के द्वारा अपना काम पूरा करने के लिए प्रयत्न करता है।

धर्म का विचार करने वाले विद्वान और धर्म का प्रचार करने वाले अभिमानी व्यक्तियों की अधिक भीड़ है लेकिन धर्ममय जीवन बिताने वाले कोई बिरले ही मनुष्य मिलते है।

एक विचारक बोल रहे थे कि धर्माभिमानियों ने जितनी हत्यायें की है उतनी नास्तिकों ने ही की । नास्तिकों ने मस्जिद मन्दिर नही तोड़े।

आस्तिक बनने वाले अंहकार ने माने हुए धर्म की आसक्ति के कारण बहुत हिंसा कीह है और अब भी हिंसा में ही तत्पर है।

अधर्मी अहंकार को कोई उतना दण्ड नही दे सकता जितना दण्ड वह स्वयं अपने अज्ञान द्वारा भोगता है।

सावधान होकर देखो तम जब भयातुर चिन्तित अशान्त होते हो तब अधर्म पूर्वक संग्रह परिग्रह एंव लोभ रूप पाप के कारण ही होते हो। वस्तु व्यक्ति एवं सुखद परिस्थिति के प्रति आसक्ति ही अधर्म का परिचय दे रही है और पूर्ण विरक्त से ही धर्ममय जीवन का परिचय मिलेगा।

परमात्मा अर्थात सत्य धर्म स्वरूप है, यही सबकों धारण किये हुए है सब कुछ इसी में टिका है। परमात्मा से ही सब कुछ प्रगट हुआ है परमात्मा में ही है और इसी में सब अदृश्य होता रहता है।

अहंकार जब कुछ अपने में रखकर मेरा मानता है तब यही अधर्म में है।

अहंकार को ही मृत्यु का भय है। जब आकारा का अभिमान छोड़कर यह मैं हूं यह मेरा है भूल जाता है तब मृत्यु समाप्त हो जाती है अमरत्व दीखने लगता है।

जहां अमरत्व का बोध है वही धर्म है।

गीता में अध्याय 12 मे ं 13 से 20 तक धर्ममय अमृत निष्काम भाव से सेवन करने वाले भगवान ने अपना अतिशय प्रिय भक्त कहा है।

भगवान की अर्थात आत्म देव की कृपा से जो नर नारी भगवान को मानते है मन्दिर में दर्शन करने जाते है, जब कीर्तन– स्तवन करते है उन्हें सावधान होकर मन चित्त बुद्धि लगाकर भगवान के कहे हुए धर्ममय अमृत को कामना रहित होकर स्वीकार करना चाहिए।

गीता पढ़ने वाले भगवान को मानने वाले लाखों अहंकार भगवान की बात गीता की बात नही मानते तुम अपने को देखो।

दुखद दोषो का त्याग

दुखस्य न कोपि दाता । परोददातीति कुबुद्धि रेखा । अर्थ सुख या दुख कोई दूसरा नही देता । दुख दूसरे से मिलता है ऐसा मानना कुबुद्धि है।

अज्ञानर में किसी दूसरे को दुखदाता मानने से अनेको पाप अपराध दोष बनते रहते है।

आश्चर्य है कि मनुष्य ने कभी न कहा होगा कि अमुक कार्य मैं दुखी होने के लिए कर रहा हूं। जो कुछ भी करता है वह सुखी होने के लिऐ ही करता है परन्तु सुख चाहते रहने पर भी सदा रह नही पाता और दुख न चाहने पर भी आ ही जाती है।

बड़े से बड़े धनवान बलवान विद्वान ऐश्वर्यवान उच्च पाधिकारी जन भी अपनी ढेरों उपाधियों एवं शाक्तियों के द्वारा यह नही कह सकते कि मेरे जीवन से अब सुख नही जा सकता और दुख नही आ सकता।

संसार की सारी सुविधायें सारे प्रयत्न दुख से बचने के लिए और सुख को सुरक्षित रखने के लिए ही है।

फिर भी मनुष्य कभी वियोग से कभी हानि से कभी अपमान से कभी अभाव से अथवा प्रतिकूलताओं से दुखी होता रहता है। अन्त में मृत्यु के दुख से कोई सम्राट भी नही बच पाता ।

मनुष्य कल्पतरू की छाया में रह कर भी सुख के अन्त में दुख भोग से नही बच पाता । यह भी गुरू निर्णय है कि संसार में सर्वोत्तम जो कुछ भी है वह राग द्वेष से रहित मनुष्य ही प्राप्त कर पाता है।

जिसे मृत्यु के दुख से तथा भय से एवं चिन्ता से मुक्त होना है उसे राग द्वेष रहित, मानसिक व्यथा से रहित तथा लोभ रहित चिन्ता रहित होना ही होगा, उसे विवेक को नष्ट करने वाले क्रोध से रहित होना ही होगा।

ब्रहार्षि वसिष्ठ का निर्णय है कि इच्छाओं के त्याग से जैसा मन शान्त होता है वैसा सैकड़ो उपदेशों से नही होता ।

सत्संग तथा विवेक एवं आत्म सन्तोष द्वारा जिसने आत्मदेव की पूजा करना जान लिया उसके लिए प्रारब्ध वश आने वाली प्रतिकूलतायें दुखद नही रह जाती है।

आत्मा का ज्ञान ही वह प्रकाश है जिससे दुखदायी दोषो को त्यागना सरल हो जाता है।

हमें सन्त ने समझाया है कि जितने भी दुख है वह अपने द्वारा बने हुए दोषों के कारण ही हैं हम लोग जब कभी दुखी होते है तब या तो लोभ के कारण या मोह के कारण या अभिमान के कारण या किसी कामना के कारण अथवा रोग के कारण ही दुखी होते है। यह समस्त दोष अज्ञान में सुखासक्ति के पीछे पुष्ट होते है।

किसी भी प्रकार की अनुकूलता का सुखास्वाद लेते ही असाक्ति ममता आदि दोषो की वृद्धि होने लगती है। वह अनुकूलता प्रतिकूलता आने पर दुखी बनाती है।

जब तक साधक अज्ञान में बढ़ने वाले दोषों को ज्ञान द्वारा न मिटायेगा तब तक किसी प्रकार की सांसारिक शक्ति सम्पत्ति सहारे दुख से नही बच सकता ।

बड़े बड़े विद्वानों बलवानों को भी मुखासक्ति के कारण दुख दाता दोषो का ज्ञान नही होता । जब कभी सन्त सदगुरू का सुसंग सुलभ होता है तभी अपने भीतर के दोषों का परिचय मिलता है। दोषों को जान लेने पर भी दोषो ं का त्याग किये बिना दुख नही मिट्ते है।

यह याद रखने योग्य निर्णय है कि पाप की माता ममता है और लोभ को पिता बताया गया है। ममता, अहंता, लोभादि बहुत भारी दोष है।

यह भी गुरू निर्णय है कि तुम प्रतिकूलताओं से दुखी होकर घर परिवार छोड़कर त्यागी भले ही बन जाओं परन्तु जब तक आसक्ति, ममता भीतर बनी रहेगी तब तक अशान्ति नही मिटेगी।

दुख बना ही रहेगा । लोभ तो पाप का पिता ही है।

अपने साथ तन धन परिवार जो कुछ भी है उसे अपना मानने से ही आसक्ति होती है, ममता बढ़ती है। जिससे आसक्ति है ममता है उसी से कोई न कोई चाह रहा करती है।

आसक्ति ममता के मिटते ही चाह मिट जाती है, चाह के अन्त होने पर अहंकार का अन्त हो जाता है तभी मुक्ति भक्ति शान्ति सुलभ रहती है। जिससे सम्बन्ध छूटना ही है, वियोग होना ही है उससे अनासक्त सेवा करो और जो नित्य प्राप्त परमात्मा है उसी में प्रेम लगा दो।

देह में आसक्ति ही आलसी बनाती है विषयों में आसक्ति ही विलासी, इच्छा पूर्ति की आसक्ति ही असंयमी और बौद्धिक विचारों की आसक्ति ही अविवेकी बनाये रहती है।

जिस ज्ञान से अन्तः करण निर्मल हो अर्थात बुद्धि स्थिर हो, मन शान्त हो चित्त चिन्मय हो वही सदज्ञान है।

अशुद्ध चिन्तन मनन का परिणाम, मन तथा चित्त की अशुद्धि है। शुद्ध के एवं सत्य के चिन्तन मनन से अन्तः करण शुद्ध होता है।

कृपा भई तब जानिये जब दीखे अपना दोष।

मिली हुई वस्तु अथवा भक्ति को अपना मानने से दोष बढ़ते है। जहां किसी संयोग में लाभ में सुख माना जाता है वही से मोह, लोभ, अभिमान, आसक्ति, ममता आदि दोष बढ़ने लगते है, वही दोष कभी सम्बद्ध विच्छेद होने पर दुख देते है। दुख से बचना चाहो तो सुख की प्रतीति होते ही सावधान रहो, किन्तु सुखस्वाद के पीछे दोष बढ़ने की याद नही रहती । जब तुम अपना कुछ न मानोगे तब कहीं भी रहते हुए सन्यासी हो। सब कुछ परमात्मा का जानते ही मुक्त हो।

तुम वस्तु, व्यक्ति से नही बंधे हो, ममता से बंधे, हो तुम कर्म से नही बंधते हो, कर्तापन से बंधते हो । कर्ता बनने पर जो सत्य प्रतीत होता है, दृष्टा बनने पर वही स्वप्रवता दीखता है। ज्ञान में केवल दृष्टा होता है न त्याग होगा है न भोग होता है।

जीवन में बाहर गति है, भीतर स्थिति है। बाहर कर्म है श्रम है भीतर विश्राम है। परात्मा ही जीवन है।

यदि तुम अपना हित चाहते हो कल्याण चाहते हो अथवा दुख देने वाले दोषो के नष्ट करना चाहते हो तो उन कर्मो से बचने उन दुर्भावों से बचते रहो, ऐसे विचारों से एवं ऐसे संग से बचते रहो जिनके कारण दुख देने वाले दोषो की वृद्धि होती है।

सहस्त्रों नर नारी, लोभी, मोही, अभिमानी कामीजनों के खान पान व्यवहार बर्ताव, वेषभूषा, भाषा तथा लेना देना देख रेख कर उसी का अनुकरण करते हुए दोषी बनते जाते है परन्तु अविवेक वश दुखद परिणाम को नही देख पाते ।

तुम परम लाभ चाहते हो तो तुच्छ वस्तुओं के लोभ वशस तुच्छ सम्मान के लोभ वश क्षणिक विषय स्पर्श के सुखास्वाद लाभ के लोभवश गुरू ज्ञान का अनादर विषय स्पश के सुखास्वाद लाभ के लोभवश गुरू ज्ञान का अनादर न करों। पशु प्रकृति की प्रबलता में गुरू ज्ञान का अनादर होता है।

तुम तन की सजावट तथा भवन की सजावट के लिए दैवी सम्पदा की उपेक्षा करते हुए आसुरी सम्पदा को स्थान न दो।

जब तुम तन को वस्त्राभूषणो से सजाते हो नये ढंग के भवन बनाते हो कमरो को सजाते हो तब भीतर अहंकार को देख उसकी दरिद्रता को पहिचानों।

यह भी गुरू निर्देश है कि जब तक तुम अपने को देह मान रहे हो तब तक दूसरो की देह में अटकते रहोगे।

यह देह शव है, इसमें आसक्ति घोर मूढ़ता है। विवेक के द्वारा इस शव में शिव को पहचानों तभी दुख का अन्त होगा।

जब तक तुम अनेको वस्तुओं व्यक्तियों के ज्ञान में अट्के रहोगे तब तक विनाश के दुख से मुक्तिनही मिलती ।

जब तक लौकिक अथवा दिव्य कामना की पूर्ति के सुख में आसक्ति है तब तक स्वाधीनता नही मिल सकती है।

जब तक भी कभी निन्दा बन जाती है क्रोध आ जाता है, कृपणता आ जाती है, मान का दान, धन का दान, अधिकार का दान, अवसर पर नही हो पात है तथा जब तक कुछ पाने का अनुरोध है किसी के आने का विरोध है, मन में क्षोभ है तब तक भजन नही हो सकता ।

जब तक प्रिय के प्रति आसक्ति है, अप्रिय से घृणा है, जब तक किसी वस्तु या व्यक्ति का आश्रय है, किसी कि अपेक्षा है, किसी प्रकार के आयोजन में संलग्रता है तब तक बुद्धि स्थित नही हो सकती है।

जब तक कोई उपाधि ली जा रही है कुछ होने की आकांक्षा है ईर्ष्या द्वेष की भावना आ जाती है तथा मन में जब तक तृष्णा है संश्या है हिंसा बन जाती है कही ंभी राग है अहंकार है तब तक किसी तीर्थ में रहने से दुख से मुकित नही मिल सकती ।

श्रीमद भागवत के एक अवधूत के उदगार है –

मेरे सुख या दुख का कारण न ये मनुष्य है न देवता है न शरीर है न ग्रह है न कर्म एंव काल आदि ही है।

श्रुतियां एवं महात्मा जन मन को ही इसका परम का रण बताते है और मन ही सारे संसार चक्र को चला रहा है।

यह मन महान शक्ति सम्पन्न है । इसी ने विषयों की और कारण रूप गुणों की वृत्तियों की सृष्टि की है। उन्ही वृत्तियों के अनुसार तामस राजस सात्विक अनेक प्रकार के कर्म होते है और कर्मानुसार ही जीव की विविध गतियां होती है। मन ही समस्त चेष्टायें करता है। मन के पीछे आत्मा तो निष्क्रिय ही है। वह ज्ञान स्वरूप द्रष्टा मात्र है। मन के संग से जीवात्मा भोक्ता बन रहा है।

मन का शान्त होना भगवान में लग जाना ही दान , तप, भजन आदि सत्कर्मो का सुन्दर फल है। इस संसार में मनुष्य को कोई दूसरा दुख या सुख नही देता, यह तो उसके चित्त का भ्रम मात्र है। सब अज्ञान में कल्पना ही है भगवान कहते है किक अपनी वृत्ति को मुझमें तन्मय कर दो और सारी शक्ति लगा कर मन को मुझ युक्त करके स्थित हो जाओ बस योग साधन का इतना ही सार संग्रह है।

एक परमात्मा उठो बैठो, खाओ पिओ, सोओ। सभी कर्म प्रभु की ही शक्ति से हो रहे है अतः उनका ध्यान न भूलो। समग्र शक्ति परमात्मा की है।

संसार के स्मरण, चिन्तन, ध्यान से मन दोषमय बन गया है। परमात्मा के स्मरण चिन्तन, ध्यान से यह गुण्मय ज्ञानमय न होने दो। सर्वत्र सभी में भपु को नमन करते रहो।

जो परमात्मा का स्मरण चिन्तन ध्यान कहीं भी आरम्भ तथा मध्य और अन्त में नही भूलते उन्हें ही विद्वान लोग सनत महात्मा साधु भक्त कहते है।

व्यास जी मंगलाचरण करते है–सत्य परम धीमाहि । सत्य स्वरूप परमात्मा का हम ध्यान करते है ।

अहंकारी मनुष्य मंगलाचरण नही करता क्योकि उसके साथ जो भी तन, मन, धन, जन शक्ति, योग्यता है उसके अपनी ही मानता है।

सज्जन साधु सन्त महात्मा मंगलाचरण करते है क्योकि वह सब कुछ परमेश्वर से ही मिला हुआ परमेश्वर का ही जानते है इसीलिए सत्य ज्ञान में यथार्थ देखते रहने के कारण मोह, लोभ, अभिमान से अहंकार से मुक्त होते है। सभी दोषो से मुक्त रहने पर ही वह साधु सन्त महात्मा कहे जाते है।

स्मरण से ही सुलभ परमात्मा

यदि तुम नित्य निरन्तर आनन्दित प्रसन्न सुखी रहता चाहते हो तो नित्य निरन्तर रहने वाले को जान लो और उसी को प्रेम से भरे रहो अर्थात प्रेम को उसी मय देखो, किसी भी अनित्य विनाशी भिन्न

पदार्थ को अप ना न माना तभी दुख रहित आनन्द से निरन्तर स्वयं को पाओगें

अपने से भिन्न विनाशी वस्तु व्यक्ति में सुख मानते हुए तथा किसी भी विनाशी पदार्थ में प्रसन्नता मानते हुए दुख से कदापि न बच सकोगें

तुम अपने अविनाशी स्वरूप को जान लो। विनाशी देह को तथा मन को अहंकार को अपना मान कर ही मोही, लोभी, अभिमानी कामी, क्रोधी बन रहे हो इसलिए इनसे असंग होकर अपने नित्व रहने वाले चेतन ज्ञान में बुद्धि को क्रमशः स्थिर रहने का अभ्यास दृढ़ करो, यह अभ्यास ही सजह योग होगा फिर अभ्यास से ही मुक्ति मिल जायेगी तभी स्वाधीन प्रसन्नता सुलभ रहेगी। तुम स्वस्थ होकर ही स्वाधीनता का आनन्द पा सकोगे। सब कुछ विस्मरण होने पर ही स्वथ हो।

पुण्यवान श्रद्धालु यह मान रहे है कि सत्संग बहुत दुर्लभ है और हमारा दुर्भाग्य है कि हमें सत्संग नही मिलता । बड़े भाग्यवान को सत्संग मिलता है हमारे ऐसे बड़े भाग्य नही है। रामायण की चौपाइयां भी कह देते है । लेकिन गुरू ज्ञान में देखने पर सत्य आत्मा–परमात्मा से अधिक सुलभ संसार में दूसरा कुछ है ही नही वह नित्य प्राप्त ही है, प्राप्त भी नही करना है। किसी प्रकार का श्रम भी नही करना है। वह सत्य परमात्मा भागने वालो को खोलने वालो को मिला ही नही

और खोजने वाले अभी खोज ही रहे है। कोई–कोई जिज्ञासु प्रेमी सारी शक्ति लगा कर खोजते हुए जब निराश होकर ठहर जाते है और अहंकार सर्वोपरि शक्ति के समर्पित होता है बुद्धि स्थिर हो जाती है तब यह बोध होता है कि मैं खोजने वाला कभी सत्य से भिन्न हुआ ही नही और यह जो असत्य की प्रतीति हो रही है उसके पीछे यदि सत्य विद्यमान न होता तो असत्य का भान ही न होता। सत्य परमात्मा से कभी भिन्नता हो ही नही सकती है केवल उसकी विस्मृति हो रही है। जो नित्य निरन्तर है ही उसकी स्मृति रहना ही योगानुभूति का साधन है।

जो नित्य है निरन्तर, जिसे तुम छोड़ ही नही सते वही ज्ञान स्वरूप चेतन तुम्ही हो, इसे कुछ दिन बार–बार स्मरण करो अपने अविनासी स्वरूप में ही चित्त को लगाओं, इसी में बुद्धि को स्थित करते रहो।

जा कुछ यह देह तथा यह वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, सुख दुख, संयोग वियोग एवं यह भूमि भवन,धन, पद, परिवार आदि ज्ञान में भर गये है, इन्हें अपना न मान कर इन सभी पदार्थो से प्रीति हटा लो, छोड़ो कुछ नही पकड़ो कुछ नही केवल देखते रहो इस प्रकार देखते रहने से तुम अपने ज्ञान स्वरूप को मुक्त अनुभव करोगे।

तुम अपने होने मात्र को देखो अनुभव करो कि केवल मैं ही हूं लेकिन यह मेरा कुछ भी नही ह।

जो कुछ भी यह प्रतीत होता है वह सत्य नही है सब मिथ्या है।

इस गुरू वाक्य को स्मरण को – (ब्रम्ह सत्य जगत मिथ्या) जो देखता है वह दृष्टा है वह मैं सत्य हूं और जो कुछ दीखता है वह दृश्य मिथ्या है क्षण क्षण रूपान्तरित हो रहा है बदल रहा है यही चेतन सत्ता में प्रकृति का अदभुत चमत्कार है।

परमात्मा अपने से भिन्न होता तब तो करने से मिलता । भगवान का भी यह निर्णय है जो परम तत्व से स्वयं को नित्य निरन्तर युक्त ज्ञान लेता है वह अपने को कुछ भी करते हुए नही देखता । प्रकृतिमें सब कुछ होते हुए देखता है।

तत्व बेत्ता बाहर दृष्टा रहता है भीतर साक्षी रहता है । समस्त क्रिया कर्म प्रकृति के अन्तर्गत चलते रहते है।

साधक को अन्तः करण की शुद्धि के लिए अवश्य ही निष्काम भाव से कर्म करते रहना आवश्यक होता है।

जब कर्म का भोक्ता अहंकार नही रहता तब कर्म योग सिद्ध होता है। जब ज्ञान का भोक्ता अहंकार नही रहता तब ज्ञान योग पूर्ण होता है। जब भाव प्रेम का भोक्ता अहंकार नही रहता तब भक्यिोग में अखण्ड आनन्दाभूति होती है।

अहं के साथ लगे हुए जमे हुए आकार जैसे जैसे प्रेम योग द्वारा गलते जाते है अथवा ज्ञान योग में जलते जाते है वैसे ही वैसे शरीर में

व्यापक मन दीखता है, तथा मन में व्यापक आत्मा और आत्मा में परमात्मा का बोध होता है तभी आत्मा परमात्मा की एकता में भेद भिन्नता का अन्त हो जाता है।

काम क्रोधादि के वेगों को शान्त करने के लिए स्वास की गति को धीमी करते जाओं।

आनन्द आत्मा का स्वरूप है इसे क्षण क्षण स्मरण करते रहो जो निरन्तर नित्य शान्त है वही आत्मा है।

प्रेम ही आनन्द है स्वरूप ही प्रेम का अधिष्ठान है । चेतन स्वरूप आत्मा ही सत्य है। इसका संग ही सत्संग है। विचार उत्पन्न होते ही चेतन स्वरूप का स्मरण रखना ही आत्मासभ्यास है। आत्मा भाव को दृढ़ रखना हैं देहभाव छोड़कर आत्मा होकर रहो।

तुम बाहर भूमि, भवन, धन, परिवार छोड़ने की तैयारी करो भीतर मेरा मेरी मानना छोड़ दो तभी मुक्त हो सकोगे।

तुम सर्वोपरि सुन्दरता श्रेष्ठता स्वतंत्रता एवं सत्य को चाहते हो वह परमात्मा में ही प्राप्त हो सकते है किसी अन्य से नही ।

अज्ञान में अहंकार ही रोगी, मोही, त्यागी, बिरागी, भोगी योगी बनता है। ज्ञान में आत्मवान बीतरागी होता है।

स्वयं में स्थिर होना शान्त होना, सन्तुष्ट रहना निरन्तर प्रसन्न रहना ही आत्मवान होना है।

ज्ञान में देखने से तुम जिस किसी वस्तु या व्यक्ति को चाहते हो वह तभी तक चाहते हो जब तक सत्य से वह वस्तु व्यक्ति सम्बन्धित रहती है। तुम देह को भी तभी तक चाहते हो, जब तक सत्य चेतन से उसका सम्बन्ध नही टूटता।

जागी हुई चेतना को ही स्वयं सत्य हूं– ऐसा बोध होता हैं ।

निद्रा में भी निरन्तर चेतना जागी रहती है।

विज्ञानमय कोष में आत्मा का बोध मिलता है।

मैं और यह में जो व्याप्त है वही तो चेतन आत्मा है।

सब कुछ चेतन आत्मा में ही हो रहा है।

नित्य योगानुभूति के लिए मैं हू यही चिन्तन करो।

लम्बे प्रणावोचरण से मनोराज्य नष्ट होता है।

अंह ज्ञान से आकार हटा दो तभी अनन्त आत्म तत्व का बोध होगा।

अंह ज्ञान को देह मांस की परिधि में न लपेटो रहो। सर्व में व्यापक चेतन तत्व ही ब्रम्हा है।

अपना ही स्मरण करो किसी नाम रूप पदार्थ को बीच में न आने दो यही तो एकान्त है।

तुम एकान्त की खोज में बाहर न जाओ। अपने में होना ही एकान्त है। केवल हूं में बुद्धि को स्थिर रखना एकान्त है अनेक नाम रूपों में एक चेतन तत्व को देखना तत्व दर्शन है। चिदाकाश ही तो परमात्मा है उसी में चित्ताकाश भूताकांश है। जो कुछ भास रहा है वह सब चिदाकाश में ही है।

चिदाकाश में ही चिदाभास को जीव करते है।

परमात्मा में जो अव्यक्त है वह प्रगट होते – होते प्रकृति वन जाता है और प्रकृति में लीन होते होते अन्त में अनन्त परमात्मा हो जाती है।

चेतन आनन्द ही परमात्मा का स्वरूप है क्षण–क्षण इसी स्वरूप का स्मरण करों। विनाशी नाम रूपों का स्मरण ही अविनाशी के स्मरण में बाधक है। जो अभी वर्तमान में नही है। उसके स्मरण चिन्तन से उसका विस्मरण हो रहा है जो निरन्तर है या जो सामने है अभी है।

परमात्मा ही निरन्तर है इसी में हम, तुम, सब कुछ भास रहा है इसे अभी ध्यान से अनुभव करों

समर्थ प्रभु के प्राकृतिक विधान से जो कुछ भी आये या जाये उसे सादर स्वीकार करते हुए सदा निरन्तर विद्यमान परमात्मा पर निर्भर रहो। इसे विस्मरण न होने दो।

गुरू वाक्य

जो तुम्हे आान को भूल एवं भ्रम को प्रगट करता है वह तुम्हारा शत्रु नही परम हितैषी है।

स्वतंत्रता

स्वातन्तयात्सुख्माप्रोति

स्वातन्त्रयाल्लभते परम।

स्वातन्त्रयात्रिवृत्ति गच्छेत

स्वातन्त्रयाल्लभते परम।

स्वतंन्त्रा से सुख को ज्ञानी प्राप्त होता है । स्वतंत्रता से ज्ञान को प्राप्त होता है । स्वतंता से निवृत्ति में चला जाता है। स्वतंत्रता से परम पद को प्राप्त होता है।

तदाबन्धो यदा चितं किच्विद्वाज्छति शोचित।

जब चित्त कुछ चाहता है कुछ सोचता है कुछ मांगता है ग्रहण करता है प्रसन्न होता है कभी दुखी होता है तभी बन्धन में है पराधीन है परतन्त्र है।

सन्त कहते है कि तुम्हारे आत्म जागरण में मोक्षप है स्वतंत्रता है। आत्मा विस्मृति में स्वरूप की विस्मृति में निद्रा में परतान्त्रता है बन्धन है।

श्रुति वचन है– स्थित चिति अहं ज्ञान स्वरूपा है यही सम्पूर्ण अहं ज्ञान विश्व में स्फुरित हो रहा है यह पूर्ण स्वतंत्र है। सारा विश्व प्रपज्व इसी पाचिति तत्व में भास रहा है। यह परम चेतन ही आनन्द स्वरूप है। जीव सुख स्वरूप है।

चेतना नित्य स्वतंत्र है । स्वतंत्रता किसी से पानी नही है। संसार में सभी प्राणी मुक्त रहना चाहते है, बन्धन किसी को भी प्रिय नही है।

कोई छोटे से छोटा जन्तु अथवा पक्षी या पशु बन्धन में रहना पसन्त नही करता । यदि बन्धन में पड़ जाता है तो मुक्त होना चाहता है।

जहां बन्धन है वही मृत्यु का भय है । जहां स्वतंत्रता है मुक्ति का आनन्द है।

पशु पक्षी नही जानते कि वह किसी न किसी लालच के कारण और बन्धन का ज्ञान न होने के कारण ही बन्धन में पड़ जाते है। अधिक दिन बन्धन में पराधीन रहते–रहते अभ्यास हो जाने पर वह मुक्त करने पर भी बन्धन के स्थान पर ही स्वतः लौट आते है यही दशा मनुष्य की है। पशु को बन्धन में डाला है इसका ज्ञान नही है यदि ज्ञान भी होता है तब रागासक्ति के कारण त्याग करना कठिन है।

प्रायः लाखों विद्वानों को यह ज्ञान ही नही है कि वे अपनी स्वाभाविक स्वतंत्रता, स्वाधीनता न जानने के कारण ही अर्थात स्वयं को न जानने के कारण दूसरों से स्वतंत्रता स्वाधीनता प्राप्त करने के

प्रयत्न में परतन्त्र पराधीन हो रहे है। जिस राष्ट्र को अथवा जिस देश को एवं जिस जाति को दूसरे राष्ट्र से अथवा दूसरे देश से एवं दूसरी जाति से कुछ भी भय है या कुछ भी पाने का लालच है वह कोई भी स्वतंत्र स्वाधीन हो ही नही सकता।

जहां तक भले है और लालच है वह विश्व विजयी होकर भी स्वतंत्र स्वाधीन नही है क्योकि लालच और भय तभी तक रहता है जब तक असत संग है अनित्य पदार्थो पर निर्भरता है अथवा जब तक परापेक्षित सुख की कामना है।

स्वतंत्र स्वाधीन वही है जिसे अपने से भिन्न किसी विनाशी वस्तु की आवश्यकता अपेक्षा नही है। जो स्वयं में तृप्त है, सन्तुष्ट है। गीता में इसी स्वतंत्रता का संकेत है जो आत्मा में ही प्रीति वाला है जो आत्मा में ही सन्तुष्ट है तृप्ता है उसे कुछ भी करना शेष नही रहता।

मनुष्य स्वतंत्रता स्वाधीनता चाहता है परन्तु करोड़ो विद्वानों को सच्ची स्वतंत्रता स्वाधीनता का ज्ञान ही नही है इसीलिए करोड़ो मनुष्य स्वाधीन होने के लिए अज्ञानवश बल विद्या का उपयोग करते हुए परतन्त्रता से पराधीनता से मुक्त न हो सके। सारी मानव जाति परतन्त्र है पराधीन है और सदा की भांति अब भी स्वतंत्र होने के लिए ही होते रहे है आज भी हो रहे है और आगे भी होते ही रहेंगे, लेकिन मानव जाति स्वतंत्र स्वाधीन नही हो सकी न हो सकेगी, कब तक न हो

सकेगी ? जब तक मानव को परतन्त्रता पराधीनता के मूल कारण का ज्ञान न होगा।

अज्ञान में मनुष्य भले ही किसी जाति को या किसी देश को अथवा किसी राष्ट्र को स्वतंत्र मान ले परन्तु जब एक राष्ट्र दूसरे पर अधिकार जमा कर तथा एक देश दूसरे देश को शक्ति प्रयोग से शासन में रख कर अथवा एक जाति दूसरी जाति को वैभव, ऐश्वर्य के बल से दबाकर जो अपने को स्वतंत्र, स्वाधीन मान कर गर्बित है वह ईश्वर तन्त्राधीन है, उसे अपनी बुद्धि की मूर्खता तथा मन की मूढ़ता एवं अहंकार की मदोन्मत्ता का ज्ञान ही नही है।

एक सन्त ने बहुत अच्छी विचार की बात समझाई – जब शरीर प्रकृति के विपरीत चलता है तब रोगी हो जाता है।

जब जीवात्मा परमात्मा से विमुख रहता है तब परतन्त्र पराधीन होता है और सुख के अन्त में दुख भोगता है।

शरीर , प्रकृति साथ चले तो शक्तिस्थ, निरोग रहता है। जीवात्मा परमात्मा के साथ रहे तो आत्मस्थ, आनन्द में रह सकता है।

परमात्मा ही परम सत्य है और प्रकृति में जो हो रहा है। यह परमात्मा का महोत्सव है इस महोत्सव को आत्मस्थ ज्ञानवान ही देखते है।

सन्त कहते है कि इस मायामय चितविलास को परमात्मा का चमत्कार समझने वाले ज्ञानवान महात्मा दुर्लभ है। ऐसे दुर्लभ महात्मा होने के लिए मानव को संसार में किसी भी वस्तु की सम्पत्ति की तथा शक्ति ही अपेक्षा नही है, केवल परतन्त्रता पराधीनता के त्याग की आवश्यकता है लेकिन इस त्याग में अहंकार ही बाधक है। अहंकार अवश्य ही महात्मा बन जाता है सन्यासी बन जाता है लेकिन आकारों का उपासक अर्थात विनाशी नाम रूपाकारों का मोही, महात्मा नही हो पाता। महात्मा का वेष बनाना अहंकार का काम है।

प्रेम को परमात्मा अनुीाव करते हुए जीवात्मा ही बोध स्वरूप महात्मा होता है ऐसा महात्मा दुर्लभ है।

जो तन द्वारा अनुकूल सुख चाहता है उसे तन तन्त्र के अधीन रहना पड़ता है।

जा पारिवारिक जनें से अनुकूल भोग चाहता है उसे पारिवारिक तन्त्राधीन रहना पड़ता है।

जो समाज से यश, प्रतिष्ठा, सहयोग का भोग चाहता है उसे समाज के तन्त्राधीन रहना पड़ता है।

जो जाति से सम्मान, सुख चाहता है उसे जाति के तन्त्राधीन रहना पड़ता है।

जो मानव, देश में पदाधिकार , सम्मान का भोग चाहता है उसे देश के तन्त्राधीन रहना पड़ता है।

इसी प्रकार जो राष्ट्र से जो राष्ट्रपति से अपने आश्रित जनता से अपने अहंकार की तृप्ति चाहता है उस राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री को जनता के तन्त्राधीन रहना पड़ता है।

जो ईश्वर से संसार के पदार्थो को चाहता है उसे ईश्वर तन्त्राधीन होकर संसार में रहना पड़ता है।

जो किसी से कुछ नही चाहता, जो परमेश्वर से भी कुछ नही चाहता वही स्वतंत्र स्वाधीन होकर परतन्त्रता पराधीनता में रहकर परमानन्दिन रहता है।

हमें समझाया गया है कि स्वतंत्रता को शान्ति को यदि पूरे प्रेम से चाहते हो तो अभी पा सकते हो और न चाहो तो कोई तुम्हें दे नही सकता है।

जाति, समाज, देश, राष्ट्र अथवा बहुत बड़ा जन समुदाय न तो किसी से स्वतंत्रता ले सकता है और न किसी को दे सकता है।

हजारों लोग कहते है कि अमुक देश आजाद है स्वतंत्र है। वे सुन सुन कर कहते है अवश्य ही जंगल के पशु पुक्षी अपनी सीमा के भीतर मनुष्यों की अपेक्षा भोजन में भोग में और निद्रा में आजाद है परन्तु मनुष्य आजाद नही है उसे तो यह भी ज्ञत नही है उसे तो यह भी

ज्ञात नही है कि कारग्रह में कितनी पीढ़ियों से पलता आ रहा है। सारी मानव जात परतन्त्राधीन है।

देश हो या समाज हो या जाति हो किसी भीड़ में पलने वालो के वह आंखे ही नही है जिनसे वह बन्धन की परतन्त्रता की पराधीनता की सीमा को देख सके। उन्हें ज्ञात ही नही है कि स्वतंत्रता के लिए जिसका भी आश्रय लिया जायेगा उसी से तन्त्राधीन रहना पड़ेगा।

जिस प्रकार कोई पशु खूंटा से बंधा हुआ स्वतंत्र होकर भरा भरा खेत खाने के लिए बन्धन तोड़ने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार लाखों मनुष्य अपने मन की कामना पूर्ति के लिए स्वतंत्रता चाहते है । लोभी मनुष्य धन प्राप्ति के लिए स्वतंत्रता चाहते है। मोही मनुष्य प्रिय संयोग का स्वतंत्रता पूर्वक भोग करने के लिए आतुह है। अभिमानियों का आंहकार पदाधिकार के लए पराधीनता से मुक्त होना चाहता है।

जहां देखो वही स्वतं.ता स्वाधीन होने के लिए जुलूस निकल रहे है अनशन कियास जा रहा है धरना दिया जा रहा है युद्ध की तैयारी की जा रही है

स्वतंत्रता रहने के लिए साधु सन्यासी का वेष धारण किया जाता है।

कुछ शिक्षित देवियां स्वतंत्र रहने के लिऐ सर्विस करते हुए अविवाहित जीवन व्यतीत कर रही है।

अनेक नारियां स्वतंत्रता पूर्वक जीवन की शान्ति के लिए पति का त्याग करके साध्वी बन रही है किसी आश्रम का आश्रय रही है।

अनेक युवक स्वतंत्र रहने के लिए स्वतंत्र पार्टी या संघ गठित कर रहे है।

यह सदगुरू की सम्मति है कि यदि तुम निन्दा स्तुति लाभ हानि द्वन्दों से नित्य मुक्त रहो और फिर सदुपदेश भी न सुनो बल्कि स्वयं ही सत्य चेतन होकर रहो तभी तुम स्वतंत्र हो

जगत की किसी भी वस्तु को या सम्बन्धित व्यक्ति को प्रेम में रख लेना और उसे प्रियतम मानन ही परतन्तत्रा है असत संग है परतन्त्र रहने तक ही प्रतिकूल शब्दों का या घटना का प्रभाव पड़ता है नित्य चेतन स्वरूपय में बुद्धि के स्थिर रहने पर प्रभाव नही पड़ता ।

सत्य से आत्मा परमात्मा से कभी भिन्नता दूरी होती ही नही इसीलिए इस नित्य प्राप्त की अनुभूति स्मरण मात्र से होती हैं असत् की स्मृति से ही सत्य की विस्मृति हो जाती है।

तुम सजग रहकर पराधीनता परतन्त्रता को अस्वीकार करते रहो अहंकार के दम्भ को अज्ञान को तथा इसी मूढ़ता को असंग रह कर देखते हुए निजानन्द में तृप्त रहो।

जो अज्ञान नांशक है आत्म स्वरूप को बोध कराने वाला है वही तो ज्ञान हैं यह ज्ञान कही से आता नही है कोई देता नही है।

सदगुरू केवल दिखा देता है कि वही तुम हो तत्वसि इस ज्ञान में साक्षी भाव से भीतर देखते रहो शरीर को बाहर कर्म व्यस्त देखो, तब अहंकार कर्ता न रहेगा।

जब कर्ता न रहेगा तभी समर्पण हागा । मेरे मन की पूरी हो यही अंहकार है। प्रभु तेरी मर्जी पूरी हो यही है अहंकार का समर्पण ।

तुम किसी के रूप में गुणों में सम्मोहित होकर पराधीन न बनों, ज्ञान द्वारा असंग रह कर प्रेम से ही प्रेम करो। किसी भी कांच के बल्ब द्वारा अथवा मिट्टी के दीपक द्वारा रोशनी से ही प्रेम होता है जब उसमें रोशनी नही दीखती तब दिया या बल्ब यो ही छोड़ दिया जाता है । इसी भांति प्रेम रूप प्रकाश से सम्बन्ध रहने दो किसी बल्ब के या दीया के मोही होकर असत संगी न बने रहो प्रेम में ही सदा प्रसन्न रहो, पराधीनता से प्रसन्ता को मुक्त किये रहो।

प्रसन्नता को स्वाधीन किसे बिनना व्याकुलता से बेचैनी से शोक से मुक्ति नही मिलती। परतन्त्र ही रहोगे। बार–बार स्मरण करो, निश्चय करो कि मैं स्वय ंही प्रेम स्वरूप निर्विकार चेतन आत्मा हूं और निरन्तर परमानन्द परमात्मा में ही हूं।

सन्तों के सत्संग में बहुत ही अदभुत बात समझने को मिली कि एक अस्तित्व के सत्य के दो छोर है । एक छोर सगुण है जिसे हम नान तौर सकते है देखते है और दूसरा छोर निर्गुण है जिसे हम नाप

तौल नही सकते देख भी नही सकते । एक दृश्य है दूसर छोर अदृश्य है। व्यक्त में ही अव्यक्त छिपा है साकार में निराकार छिपा है।

यह गुरू सम्मति है कि सब अवलम्ब सहारे छोड़कर स्वयं में रमण करो तब मन निरूद्ध हो जायेगा। आनन्द में देखो तब मन रूक जायेगा।

असत्य तो अहंकार का मन का अथवा व्यक्तिगत होता है परन्तु सत्य किसी एक का नही होता ।

सत्य को मानने वाले मन अगणित है परन्तु सत्य एक ही है सत्य को हिन्दू मुसलमान जैन, बौद्ध आदि कोई भी नाम रूपाभिमानी अपने में सीमित नही कर सकता। सिन्धु के भीतर अनेक प्रकार के पात्र समुद्र से भरे रह सकते है परन्तु समुद्र के जल की अपनी–अपनी सीमा के भीतर लेकर भी समुद्र को सीमित नही कर सकते । इसी प्रकार परमात्मा को अपनी–अपनी मान्यताओं में सीमित कर सकना किसी भी व्यक्ति के लिए सम्भव नही है। असत सड़गी मनोभय, अहंकार सुन्दर रूप से स्वाद से सुन्दर गीत वाद्य से प्रिय आलिंगन से सुखी होता है परन्तु यह ज्ञान नही होता कि सुखास्वाद कभी बाहर से किसी वस्तु व्यक्ति के संयोग से नही आता । सुख तो भीतर आत्मा से आता है। यह आत्मा सुख का स्रोत भीतर है बाहर नही है।

दुख इसीलिए भोगना पड़ता है क्योकि असतसंगी अहंकार मन में सवार रहकर किसी वस्तु के द्वारा ही मिलता हुआ सुख मानता है। जब

वस्तु व्यक्ति से सम्बन्ध टूटता है तब दुखी होता हैं जिसे सुख स्वरूप आत्मा का बोध हो जाता है वही स्वाधीन प्रसन्नता से तृप्त रहकर स्वतंत्र होता है।

पर की स्मृति परतन्त्र बनाती है स्वयं में सहज सुख की स्मृति से स्वतंत्रता रहती है। बार–बार भीतर देखो, पहिचानों, अनुभव करो कि सुख अपने में ही अपने भीतर है मैं सुख स्वरूप ही हूं किसी भी वस्तु व्यक्ति के नाम रूप को प्रीति में न भरो तभी स्वतंत्र रहोगे।

व्यास भगवान कहते है ज्ञान में स्थिर रहने के लिए बार–बार श्रवण मनन करते रहो । यदि आत्म ज्ञान की चर्चा न सुनोगे तब प्रपज्च चर्चा सुनोगे उसी का मनन करोगे इसलिए सत आत्मा परमात्मा की बात सुनो। बार–बार सुनो।

सुन–सुन कर प्रपज्च भर गया है, विनाशी नाम रूप भर गए है अब बार–बार अविनाशी की बात सुनो बार–बार मनन करो तब यह भी भर जायेगा । अविनाशी से पूर्ण प्रीति स्वतंत्र है।

सत के संग में स्वतंत्रता है अनित्य के असत के संग से परतन्त्रता है। स्वतंत्रता मोक्ष तो आत्मा का स्वभाव है।

विनाशी क्षुद्र के प्रति प्रेम क्षुद्रमय ही रहेगा। क्षुद्र का प्रेम आत्मवान नही हो पायेगा

अज्ञान में कोई क्षुद्र को विनाशी वस्तु को पकड़े हुए मोही, लोभी बन रहा है, कोई उन्हें छोड़ने की चिन्ता में व्यस्त है–यही असत संग है।

असत संगी अहंकार का हित इसी में है कि इसे ज्ञान में देखते हुए सदा ही कृतज्ञता, विनम्रता, प्रसन्नता तथा शान्ति सन्तोष से आपूरित रहने दो, यही अंहकार का स्वर्ग होगा।

अहंकार को ही स्वर्गके सुखोपभोग की कामना है और नर्क का भय है इसीलिए का भय है इसीलिए अहंकार जब कभी सांसारिक पदार्थो के सहारे भय से नहीं बच पाता और इच्छानुसार सुखोपभोग से वञ्चित रहता है तब किसी विद्वान से सुनकर देवी देवता या सर्वशक्तिमान ईश्वर की आराधना करता है।

किसी – किसी पुण्यवान को सदगुरू कृपा, आत्मदेव की कृपा से यह ज्ञान होता है कि चाहे जितने हजार वर्ष सुखोपभोग करो, तृप्ति न होगी और चाहे जितना अधिक धन, ऐश्वर्य, वैभव, संसार में प्राप्त कर लो फिर भी विनाशी के सहारे भय न मिटेगा। आकारों को उतार देने पर ममता के लिए कोई वस्तु व्यक्ति अपनी न रहने पर मुक्ति द्वार में प्रवेश होगा।

परमगुरू ने यह भी कह दिया है कि यह मुक्तिप्रद असतसंग के त्याग का ज्ञान जो तुम्हारे हित के लिए कहा गया है इसे उसको कदापि न सुनाना जो तप रहित हो अर्थात जो प्रतिकूलताओं में सहिष्णु न हो

सवोधर्म पालन में कष्टों को न सहकर विचलित हो जाता हो जो भोगासक्त होने के कारण असहिष्णु हो। उसे भी न सुनाना जो वेद शास्त्र, सन्त गुरू जन महात्माओं के प्रति श्रद्धा न रखता हो, अभक्ता हो। उसे भी न सुनाना जो सुनने की रूचि न रखता हो और जो भगवान को ईश्वर न मानता ही न हो जो कृतघी हो उसे भी नही सुनाना।

जब कहना तब श्रद्धावान प्रेमी जिज्ञासुओं से ही कहना जो श्रद्धावान प्रेम भाव से इस ज्ञान में यज्ञ में अधिकार प्राप्त करेगा उसका मोह अवश्य नष्ट हागा।

हम सभी जिज्ञासु श्रद्धालु श्रोताओं को अपने हृदय में देखना चाहिए। क्या हम भी सासहपूर्वक कह सकते है (कि नष्टों मोहः) मेरा मोह नष्ट हो गया।

क्या हम श्रोता लोग भी कह सकते है कि आपकी कृपा हमें अपने स्वरूप की तथा अपने कर्तव्य की और नित्य प्राप्त परमात्मा की स्मृति प्राप्त हो रही है।

क्या हक श्रोता जिज्ञासु अब भगवान को मान कर जीवन में स्वतंत्रता प्राप्त कर सकेगें ? तब तो हम धन्य है, कृत कृत्य है सदा के लिए स्वस्थ है शान्त है।

सन्त कहते है कि जो दीखता है यह सपना है और जो नही दीखता वही अदृश्य सत चेतन तत्व अपना है ।तुम उसी मय बन रहे हो

जिसे चाहते हो जिसे पाने का आकांक्षा है चाह के अनुसार ही तुम्हारी प्रीति की आकृति बन जाती है वही परतन्त्र बनाती है।

तुम आत्मा गौरव खोकर पद का उपाधि का अनित्य वस्तु का मूल्य बढ़ाते हुए परतन्त्र हो रहे है।

जो तुम्हें दूसरों के द्वारा मिलेगा, जो सम्मान पद मिलेगा वही परतन्त्र पराधीन बनायेगा और कभी छूट जायेगा। सारा जत परापेक्ष से कामना से परापेक्षा से कामना से परतन्त्र है पराधीन है।

यदि तुम होश में सुन रहे हो पढ़ रहे हो तो अब से कुछ चाहो ही नही जो दूसरों से मिलता है उसकी कामना छोड़ दो।

सुखासक्त भोगी अहंकार में कामना त्याग का साहस आसानीी से नही होता । वही त्याग कर पाता है जो भरपूर दुखी होता है।

जब कभी तुम्हें सुखास्वाद मिला वह बाहर से नहीं मिला तुम्हीं से मिला परन्तु तुमने ध्यान से देखा नही अब देखो? यदि स्वादिष्ट ग्रास मुख में रखते हो तब तुम कहते को कि अमुक मिठाई बहुत अच्छी है उसी का नाम रूप याद आता है परन्तु मिठाई के स्वा का सुख रसना द्वारा मनोमय अहंकार भोगता है प्रीति ही सुखमय बन जाती है।

पवित्र और पावन

पुराणों में अनेक-अनेक पापों के नाश के लिए गंगा स्नान तथा तीर्थ यात्रा देव दर्शन, साधु सन्त के दर्शन भगवद कथा श्रवण, भगवद

नाम संकीर्तन, मन्त्रानुष्ठान भगवद नाम स्मरण की महिमा वर्णित है। लिखा है कि कोटि कोटि पापों का नाश होता हैं ऐसा करने वाले अगणित पापियों का उद्धार हो चका है।

गीता में बहुत अदभुत बात बताई गई है दुराचारी पापी भी भजन करने से धर्मात्मा हो जाता है लेकिन एक शर्त लगा दी है कि भगवान को भजने वाला अन्य किसी वस्तु या व्यक्ति का चिन्तन भजन छोड़कर भगवद भजन करे तभी धर्मात्मा होगा।

पापी जनों को पाप से मुक्त होने की बातें बहुत मिलती है परन्तु मननशील मनीषी विद्वानों को पावन होना हो तब गीता में यज्ञ दान तप करते रहने की प्रेरणा दी गयी है।

पवित्र होने के उपाय पापीजनों को बताए गए है और पावन होने का उपाय मनीषी, विद्वान धर्म प रायण, पुण्यवान को बताया गया है।

पावन उसे कहते है जिसके संग से पाप धुलते है लेकिन जो पावन है वह अपवित्र पतित नही होता।

जिस तरह अग्नि दोषो को जलाते हुए स्वयं दोष मुक्त रहती है क्योकि अग्नि पावन है इसी प्रकार गंगा जी पावन है । सन्त महात्मा भी पावन है। परमात्मा और उसके नाम भी पावन है।

जब मनीषी तत्व दर्शी पावन हो जाते है तब उनके संग से तत जन पवित्र होते है परन्तु मनीषी सन्त पतितों के संग से स्वयं अपवित्र

नही होते। वह अपवित्र तभी हो सकते है जब प्राप्त शक्ति, सम्पत्ति, योग्यता के द्वारा यज्ञ कर्म नही करते तथा दान नही करते है अथवा तप के विपरीत प्राप्त शक्ति सम्पत्ति के भों बने रहते है और प्रतिकूलताओं में सहिष्णु नही होते।

गीता में यज्ञ कर्म को केवल हवन करते रहने से सीमित नही किया है यह तो यज्ञ का आरम्भ है इसके अतिरिक्त सोलह प्रकार के यज्ञों का भी वर्णन है। ज्ञान को सर्वोपरि यज्ञ कहा है।

संसार से जो कुछ मिला ह उसे स्वयं न भोगते हुए समाज की सेवा में सदुपयोग करना अथवा सर्वभूतो के हितर्था अपर्ण करना और उसके फल को न चाहना यही ज्ञान की पूर्णता है। यही दान की पूर्णता होती है।

इस प्रकार के यज्ञ दान में प्रतिकूलतायें दीखती हो उन्हे प्रसन्नतापूर्वक सहन करना तप है।

इस प्रकार का यज्ञ दान एवं तप विद्वानों को पावन बना देता है और तीर्थ सेवन, पर्व स्नान, देव दर्शन, सन्त महात्मा का दर्शन करने से तथा सत कथा श्रवण आदि शुभ कर्मो से पाप नष्ट होते है निष्काम रहकर यज्ञ कर्म तथा दान एवं तप से पावनता आती है।

यथार्थदर्शी भिखारी नहीं होते

यदि तुम्हारी बुद्धि में विचार करने की शक्ति जाग्रत है तो अभी देखों मन्दिरों में लाखों दर्शनार्थी जाते है, दक्षिण में मन्दिरों में लाइन लगाकर चलते चलते घन्टों लग जाते है। इन दर्शको की भीड़ में ऐसा दर्शक शायद कभी मिलेगा जो कामना वासना से सनी हुई शिक्षा की झोली उतार के दर्शन करने गया हो।

किसी किसी मन्दिर में अन्य सामान के साथ वस्त्र भी उतार कर कोई एक शुद्ध वस्त्र पहिन कर जाना होता है लेकिन किसी प्रबन्धक पुजारी में यह शक्ति नही दीखती कि कामना की झोली भी उतरवा ले।

यदि तुम सावधान हो सको तो किसी भी मन्दिर में भिखारी बनकर न जाओ बल्कि यह देखो कि समर्थ दाता ने मांगने के पहले ऐसा क्या दिया है जिसे तुमने नही बनाया। तुम्हारे बनाए बिना जो देह इन्द्रियां तथा शक्ति एवं मन चित्त बुद्धि अहंकार आदि साधन मिले है यह सब उसी दाता के नियमान्तर्गत कार्य कर रहे है यह सब देखकर तुम दाता प्रभु को खुले हाथ जोड़कर धन्यवाद देने जाओं, कृतज्ञता, विनम्रता , प्रसन्नता एंव प्रीति से ीारे हुए हृदय को लेकर जाओं, तुम भीड़ में न घुसों लाइन में न पड़ों, दाता प्रभु को लेकर जाओं, तुम भीड़ मेंन घुसों लाइन में न पड़ो दाता प्रभु को जन्तर्यामी जानकर दूर से ही मन्दिर को प्रणाम करते हुए आर्शीवाद दो दाता की जै जै कार करो और यही प्रार्थना करो कि प्रभु के दर्शन के लिए प्रज्ञा दृष्टि खुले बुद्धि शुद्ध हो जाए। बस और कुछ न चाहे।

लाखों भिखारी मन्दिरों मेंअपनी अपनी कामना पूर्ति के लिए प्रार्थी बनते है। प्रायः कुछ न कुछ पाने या बचाने की ही चिन्ता रहती है लेकिन कोई भी यह प्रार्थना नही करता है कि प्रभो हमारी स्वास चलती रहे, हृदय की धड़कन बन्द न होने पाये, क्योकि यह बन्द हुई तो जो कुछ वरदान मिलेगा वह व्यर्थ हो जायेगा।

तुम सावधान हो तो कामना पूर्ति के लिए प्रार्थी बनकर कामना निवृत्ति के लिए अहंकार से मुक्ति के लिए और नित्य प्राप्त परमात्मा की अभेद भक्ति के लिए प्रार्थना करों जब होश आ जाए तभी और जहां हो वही प्रार्थना करो, परमात्मा परमदेव सब ओर से सभी समय सुनता है। तुम परमात्मा को भले ही खोजते रहो परन्तु तुम्हें प्रभु प्रतिक्षण देखता है– ऐसा विश्वास दृढ़ करो।

जो अपने में निरन्तर है वही अपना है वह सदैव सभी का है जो सदैव सभी का है सर्वत्र है वही अपना भी है अभी है सब उसी में ऐसे परमात्मा से भिन्न जो कुछ भी हो उसे तुम चाहो ही नही । केवल परमात्मा के योग को बोध को प्रेम को ही चाहो।

परमात्मा के योग बोध, प्रेम के लिए ममता कामना से रहित होना नितान्त आवश्यक है।

परम सत्य का बोध होना सर्वोपरि सिद्धि है।

सन्त से यह भी सुना है कि किसी प्रकार की कमी नही जिसका कभी अभाव नही दूरी नही वही सत्य है ऐसे सत्य परमात्मा का संयोग नही होना है, इसका नित्य योग है अतः इसका बोध होना है।

स्वरूप स्थिति का उत्थान होता है स्वरूप बोध का उत्थन नही होता।

अंह वृत्ति के पीछे अहं स्फूर्ति बोध है। अक्रिय होने पर आत्मानुभूति ही शेष रहती है।

ब्रम्हाकार वृत्ति भी उपासना की सुदृढ़ अवस्था है यह भी बोध नही है। जब प्रीति का अभाव होता है तब केवल चेतना का अनुभव होता है।

मन के मौन होने पर चित्त के शान्त होने पर बुद्धि के स्थिर होने पर जो है ही वही सत्य अनुभूति के रूप में शेष रहता है।

सावधान रहने पर अज्ञान को समझना ही ज्ञान का द्वार है। जो पढ़ा है सुना है उसे एक तरफ रख देने पर सत्य की अक्षर की अनुभूति होती है।

सन्त कहते है कि जब सत्य चतुर्दिक है तब तुम झूठ क्यों बन रहे हो ? तुम भी सत्य ही हो, अनुभव करो सत्य हम मयही है।

अनादि अनन्त परमात्मा की इस धरती पर करोड़ो मनुष्य जिस गुरू सन्देश को नही पढ़ते सुनते वह तुम पढ़ रहे हो सुन रहे हो। अब

सावधान होकर जो पढ़ते हो उसे मन में मनन करो, चित्त से चिन्तन करो एवं बुद्धि से विचार करो और अपना निरीक्षण करो अर्थात अपने को पढ़ो।

परमात्मा की सृष्टि में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। करोड़ो मनुष्यों में बलवान श्रेष्ठ है। करोड़ो बलवानों में दूसरों की सेवा करने वाला श्रमवान श्रेष्ठ है। करोड़ो श्रमीजनो में धनवान श्रेष्ठ है। करोड़ो धनवानों में दानी श्रेष्ठ है। लाखों दानियों में विद्वान श्रेष्ठ हैं सहस्त्रों विद्वानों में धर्म परायण मनुष्य श्रेष्ठ हैं सहस्त्रों धर्मवानों में विवेकी श्रेष्ठ है। सैकड़ों विवेकी जनो में आत्मज्ञानी श्रेष्ठ है। सैकड़ों आत्मज्ञानियों में सभी में परमात्मा की आत्मा को जानने वाला विज्ञानी श्रेष्ठ है ऐसे अनेक ज्ञानी विज्ञानी जनों में सर्व के हित में तत्पर निष्काम प्रेम से नित्य तृत्त महात्मा श्रेष्ठ है।

सावधान होकर यह भी समझ लो कि जो नित्य है, सर्वत्र पूर्ण है परमतृप्त है वही परमात्मा है।

जिसका समग्र प्रेम परमात्मा मय हो रहा हे। वही महात्मा है। जो अपने ज्ञान स्वरूप में नाम रूपमय उपाधियों को ओढ़े हुए है वही जीवात्मा है।

मिले हुए को मेरा मान कर अहंकार के आकारों को बढ़ाते रहना पाप का विस्तार है।

प्रेम से विनाशी नाम रूपाकारा को हटाते जाना, परम आत्मा में प्रेम को लगाते जाना पुण्यमय जीवन है। आत्मा परमात्मा की अभिन्नता का अनुभव करने वाले सत्य दर्शी का कहना है कि अविनाशी चेतना जड़त्व को तोड़ती हुई पूर्ण होने के लिए निरन्तर गतिमान है।

प्रकृति का जड़ परमाणु चिद अणु को अपने अंक में समेटना चाहता है और चिद अणु परमाणु को जोड़कर तत्काल विभु होने का आनन्दानुभ्व ले रहा है यही चिदविलास है।

चेतना ही सर्वमय है। मनोमय कोष में वासनामय है विज्ञान मय कोष में यही चेतन प्रेम को लेकर उपासना मय है।

वासना मिटने पर मन मिटता है । आत्मा के ज्ञान से वासना मिटती है । हृदय के शुद्ध होने पर आत्मा का ज्ञान प्रकाशित होता है दोषो के त्याग से चेतन आत्मा के प्रति से हृदय शुद्ध होता है।

संसार में अपना कुछ न मानने से दोषो का त्याग होता है। परमात्मा को ही सब में देखने से प्रेम पूर्ण होता है।

अनुभव स्वरूप आकारों के साथ अहंकार बना हैं अहंकार ही कर्ता भोक्ता है । कर्ता भोक्ता न रहे तभी अहंकार का समर्पण समर्पण की योग्यता आती है। जब दुख सुख का भाननही रहता तभी आनन्दानुभूति होी है। आनन्द हो आत्मा का स्वरूप है। हमें गुरु ज्ञान में सावधान किया गया है किक जब तुम जप तथा पाठ पूजन मन्दिरों में दर्शन करते हुए धन मान पद प्रतिष्ठा प्रिय संयोग तथा इच्छा की पर्ति चाहते

हो जब तुम किसी प्रकार प्रकार की प्रतिकूलता को तन मन द्वारा सहन नही कर पाते हो जब तुम दुखी होकर दूसरे को दोषी मानते हुए अपने मन के दोष को नही देख पाते हो । तब तुम गुरू ज्ञान की अथवा भगवान को अथवा रामायण गीता आदि सदग्रन्थो को मानते हुए भी सदग्रन्थों की बात नही मानते हो और तब तुम असावधन रह कर ही अज्ञान में देव दर्शन पूजन भजन करते हुए अहंकार को ही तृप्त करना चाहते हो।

सावधान रह कर अपने को देखो यदि तुम रामायण गीता के वाक्यों को पढ़ते सुनते हुए कभी शौकाकुल होते हो तब मोह लोभ से भ्रमित हो । जहं कहीं असत अनित्य से लगाव होता है वही से अपवित्रता बढ़ने लगती है। इस पर कौन ध्यान देता है ?

जहां कही कुछ सुन कर देख कर कुछ पा कर कुछ खा कर सुखास्वाद आएगा वहींस आसक्ति आदि दोषो की वृद्धि होने लगता है इसे कौन देखता है। यथार्थ के समझने में सत्य के निर्णय में तुम्हें इसीलिए कठिनाई होती है क्योकि बुद्धि में अनेक धाराणाये भरी है मन मान्यताओं स्वीकृतियों से बंधो हुआ है, असत संग का अभ्यास दृढ़ हो चुका है। सावधान होकर देखो, अहंकार कभी कुछ भोग छोड़ता है तो त्याग को पकड़ लेता है।

मैने इतना त्याग किया है इतना तप किया है इत्याद अनेक कृत्यों के प्रदर्शन से कथानक से अंहकार पुष्ट होता है।

सावधान होकर समझ लो कुछ करने से संसार के पदार्थ मिलते है परन्तु परमात्मा नही मिलता ।

यदि समझ में आता है तो तुम करके देख लो जो काम किया है वही अधिक कर लो।

परमात्मा के लिए आनन्द के लिए कुछ करना नही है प्रत्युत अंह के आकारों को खोना है । कर्ता भाव हटाकर शान्त होना है तब दृष्टा प्रगट होता है।

जो दृष्टा है वह कर्ता भोक्ता नही होता और जो कर्ता है भोक्ता है वह दृष्ट नही होता।

एक सन्त ने बताया कि जब सब दिशाऍ बन्द हो जाती है। तब ग्यारवही दिशा खुलती है । जब नीचे के द्वारों को पार कर लिया जता है तब ऊपर का द्वार खुलता है। ध्यान योगी सिद्ध ही उसे देखते है।

सावधान साधाक भोग छोड़ने के पश्चात त्याग की स्मृति को भी छोड़ता है, तभी अहंकार के पार दर्शक का द्वार खुलता है।

सावधान होकर समझ लो–जो वस्तु दूर है उसे तो चलकर पाया जाता है परन्तु जो कभी दूर होता ही नही उसे सत्य परमात्मा तो ठहर कर रूक कर शानत मौन होकर निरन्तर मिला हुआ अनुभव किया जाता है।

गुरू सन्देश है कि ठहरो देखो– परमात्मा उसे समझो जिसे तुम खो नही सकते । जो तुमसे छिन सकता है छूट सकता है जो तुम्हें छोड़ देता है वह प्रकृति का हिस्सा है।

सावधान होकर विचार करो तुम गीता में यह पढ़ते सुनते हो कि अहमात्मा गुड़ाकेश एक सन्त ने बताया कि जब सब दिशाएं बन्द हो जाती है तब ग्यारवी दिशा खुलती है जब नीचे के द्वारों को पार कर लिया जाता है तब ऊपर का द्वार खुलता है ध्यान योगी सिद्ध ही उसे देखते है।

सावधान साधक, भोग छोड़ने के पश्चात त्याक की स्मृति को भी छोड़ता है। तभी अंहकार के पार दर्शन का द्वारा खुलता है।

भगवान ने कहा है कि मैं सभी भूत प्राणियों में होकर निरन्तर विद्यमान हूं। सब के आदि में मैं ही हूं उसके मध्य में मैं ही हूं और अन्त में भी मैं ही शेष रहता हूं यह पढ़ते सुनते हुए भीतुम कितने असावधान हो कि परमात्मा को अपने साथ आत्मा के रूप में नही जान कर बाहर खोजते हो भगवान की मूर्ति बनाते हो, मन्दिर बनाते हो लेकिन बने हुए देह रुपी मन्दिर में नित्य प्रतिष्ठित भगवान को भूले रहते हो।

तुम कितने असावधान हो कि परमात्म के विधान से ऐसा शरीर मिला है इसमें इन्द्रियां है मन है, बुद्धि है ज्ञान है, शक्ति है तथा निरन्तर प्रणों की गति धड़कन नाड़ी, तथा ग्रहण पोषण पाचन निरसन

आदि जहां जब जो कुछ होना चाहिए वह तुम्हारे कुछ किए बिना हो रहा है उसे तुम सावधान होकर ध्यान से नही देखते हो बल्कि हाथ जोड़ कर कुछ न कुछ पाने की या कुछ बचाने की प्रार्थना करते हो।

सावधान होकर देखो तुम कभी यह प्रार्थना नही करते हो कि प्रभो ? मेरी धड़कन चलाते रहो स्वासें चलाते रहो, तुम कभी प्रार्थना नही करते हो कि भूख प्यास जगाते रहो और खाये पिए बिना अन्न जल को पचाते रहो। तुम कभी प्रार्थना नही करते हो कि मल मूत्रादि को बाहर निकालते रहो और इस देह को सड़ने गलने से नित्य बचाते रहो।

तुम्हें यह शंका चिन्ता भी नही होती, कि कहीं धड़कन बन्द न हो जाये, स्वास रूक न जाए रात भर में यह देह सड़ गल न जाए।

चिन्ता होती है कि कहीं हानि न हो जाये, किसी प्रिय जन का वियोग न हो जाये या कहीं अपमान न हो जाये। भय होता है कि कहीं जूता, चप्पल, घड़ी, छड़ी, धोती, कोट, कुर्ता आदि सामान छूट न जाए।

चिन्ता तथा भय से चित्त चिन्तित होता है कि कहीं कोई चोर डाकू खर में न आ जाए । यह चिन्ता भय नहीं होता कि कहीं लोभ, मोह, ममता, आसक्ति कामना अभिमान मद, मत्सार आदि। बिकार न आ जाए। यह भय नही होता कि कही ईर्ष्या द्वेष, क्रोधादि की आग न प्रगत हो जाये।

कभी कभी तुम सुन्दर प्रतीत होने वाले रूप में तथा रंगीन पदार्थो में सम्मोहित होकर उन्हें पाने की प्रार्थना करते हो लेकिन बिना मांगे ही सुन्दर रूप रंग देखने वाली आंखे मिली है इसी प्रकार तुम सुन्दर स्वर ताल युक्त गीत सुनना चाहते हो, तुम रेडियों तथा टेप रिकार्ड एवं ध्वनि पकड़ने वाले यन्त्र पाने के लिए आतुर होते हो लेकिन इसके पहिले ही सुनने वाले कान किसने दिए है इसे ज्ञान में देखो।

पूजा, पाठ जप, अध्ययन, अथवा सत कथा श्रवम करते हुए गीता रामायण भागवत आदि धर्म ग्रन्तापें का अध्ययन अथवा इनकी विशद व्याख्या करते हुए जो नही होना चाहिए वह होता रहता है और जो होना चाहिए वह नही होता।

मूर्ख, अशिक्षित ही नही हम अपने को शिक्षित, विद्वान पण्डित, धर्मी, शुभकर्मी, साधु साधक, त्यागी मानते है फिर भी लोभ, मोह ममता, आसक्ति दम्भ, द्वेष क्रोधादि विकारों से मुक्त नही हो पाते और प्रायः इतने असावधान है कि इन विकारों दोषों को ध्यान से देखते भी नही और इन दोषो विकारों के कारण ही अशान्त रहते है दुखी होते है और अनेक अपराध पाप करते है।

सन्त सदगुरू सावधान करते है कि तुम जब कभी दुखी अशान्त होते हो तब अपने भीतर दोषो को देखो दूसरे को दोषी न ठहराओं अपने मन में दोषो का त्याग करों।

तुम विवेक के द्वारा प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बना लो। भाग्य को न कोसते रहो, सावधान होकर देखो कि कीचड़ से ही कमल उत्पन्न होता है उसी से रस लेता है दुर्गन्ध को सुगन्ध में परिणित करता है कीचड़ की सीमा को पार करते हुए जल में बढ़ता है और उसे भी पार करके खुले आकाश में खिलता है सूर्य के दर्शन करता है । इसी प्रकार तुम्हें जड़त्व को पार करके चिन्मयत्व को प्राप्त करना है।

सावधान साधक को ही सिद्धि सुलभ होती है। सिद्ध पुरूष ज्ञानमयी दृष्टि से संसार को ब्रहम्य देखता है। असिद्ध पुरूष को मोहमयी दृष्टि से यह संसार ही सत्य प्रतीत होता है।

ज्ञानमयी दृष्टि से देह आत्म नही आत्मा मय दीखती है । मोहमयी दृष्टि से देह ही आत्मा प्रतीत होती है। सावधान रहने पर आत्मा ही आनन्दमय अनुभूत होती है। असावधान पुरूष सुा को ही आनन्द मानते है जो कि आनन्दाभास है। मिथ्या है।

हमें सावधान किया गया है कि थोड़ी थोड़ी देर आत्म भाव में स्थिर हो जाओ। आत्म भाव में स्थिर रहने पर जगत का आभास नही होता ।

जब चेतना में बुद्धि स्थिर हो जाती है तब जानने को तथा पाने को कुछ भी नही रह जाता । थोड़ी देर स्थिर करके देखो।

यदि तुम सावधान होकर दृश्य को देखते देखते अथवा भगवान की मूर्ति को देखते देखते उसी समय देखने वाले को ज्ञान दृष्टि से

देखने लगे तो उसी क्षण अपने सब कुछ के पीछें परमात्मा का अनुभव होगा। यही वास्तविक दर्शन है।

लोभी, मोही, सुख के कामी, अभिमानी जनों के वाक्य लघु वाक्य होते है उन्हें सुनते हुए मानते हुए तुम भी उन्हीं की भांति मोही, लोभी, अभिमानी कामी बन गए हो।

भगवान के वाक्य जो सन्त माहत्मा गुरू जन बोलते है–यह गुरू वाक्य है इन गुरू वाक्यों को मानने वाले श्रद्धालु साधक निर्मोही निर्लोभी, निराभिमानी, निष्काम होकर तत्व ज्ञानी आत्मज्ञानी होते है।

तुम अहंकार को जितना अधिक समपर्ण करोगे उतना ही प्रभु की कृपा एवं प्रभु के अनुग्रह का बोध होगा।

सावधान रहना । मन उस प्लेट की भांति है जिसमें अन्धकार के रहते ही चित्र आते है प्रकाश में नही आते उसी प्रकार अज्ञान अन्धकार के रहते मन संसार के चित्र भरते रहते है लेकिन ज्ञान प्रकाश के सामने चित्र अंकित नही होते इसीलिए तुम आत्म ज्ञान से विमुख न रहो।

मन्दिर में भगवान भगवती के दर्शन करते हुए जब तुम कुछ भांगते हो ओर प्रेम भाव से विभोर हृदय से जब दर्शन करते हो जब सर्व व्यापक परमात्मा अथवा भगवान तुम्हारे ऊपर कृपा करता है उसके अनुग्रह से ही तुम इस प्रकार के गुरू वाक्यों को पढ़ते सुनते हो।

जैसे–जैसे तुम्हारा अन्तःकरण दर्शन करते हुए पवित्र होता जाता है वैसे वैसे तुम्हारी बुद्धि ज्ञान से प्रकाशित होती जाती है और अपने आपका दर्शन स्पष्ट हो जाता है। आान में दर्शन नही ग्रहण होता है।

साारा अज्ञान केवल ज्ञान प्रकाश से विमुख रहने के कारण है। अन्धकार में चलने दौड़ने पकड़ने का सहास अज्ञानी मूर्खो में भी होता है परन्तु पकड़े हुए को देखने का अथवा आत्म निरीक्षण का एवं परिणाम दर्शन का सुअवसर कृपा पात्र, बुद्धिशाली विवेक साधक को ही प्राप्त होती है।

इसीलिए भगवान ने प्रीति पूर्वक भजन करने वाले भक्त बुद्धि योग देने का आश्वासन दिया है। बुद्धि को मोह रहित करने को कहा है। भगवान प्रज्ञा को स्थिर करने की साधना बताते और प्रज्ञा के स्थिर होने का महत् फल दिखाते है। भगवान के इस उपदेश सन्देश को लाखों श्रद्धालु मन्दिरों में दर्शन करते हुए नही मानते इसीलिए मुक्त भक्त नही हो पाते।

परम गुरू भगवान तो कह चुके है कि अविनाशी आत्मा जिन शरीरों में प्रकाशित हो रहा है वह सभी शरीर आदि अन्त वाले फिर भी भगवन को मानने वाले लाखों नर नारी उन्हीं विनाशी शरीर में ही आसक्त है उन्हें बने रहने की प्रार्थना करते है। मृत्यु के भयवश अविनाशी चेतन आत्मा को भूल जाते है।

इन वाक्यों के पढ़ने सुनने वाले बुद्धिमान जिज्ञासुओं सावधान होकर इस विनाशी देह और अविनाशी चेतन आत्मा के निर्णय बार–बार स्मरण करो जिससे कि दृढ़ निश्चय हो जाये यह विनाशी है इसमें चेतन आत्मा मैं अविनाशी हूं। शरीर के नष्ट जाने पर भी मैं सदा रहूंगा, मैं परमात्मा का ही हूं परमात्मा से निरन्तर मिला हूं कभी भिन्न हो सकता ही नही । मैं परमात्मा की आत्मा हूं मेरे बाहर भीतर ऊपर नीचे परमात्मा ही है वही हम मय है।

हमें सावधान किया गया है कि अपने में जिसे रखकर मेरा कहते हो उसका विनाश होना ही है ओर अपने को जिसमें रख कर मैं कहते हो उसका हास होना ही है।

जिसे तुम छोड़ नही सकते खो नही सकते वही जीवन का सत्य है और संसार में चाहे जितना जो कुछ भी मिलेगा उसे तुम पकड़े नही रह सकते सब छुट ही जायेगा । जो नित्य रहेगा वही सत् चेतन आत्मा है।

सात पुरी हम देखिया देखे चारो धाम।

देखे चारो धाम सबन मा पाथर पानी।

करमन के बल पड़े मुत की राह भुलानी।

चलत–चलत पग थके छीन भई अपनी काया।

काम क्रोध नहिं मिटे बैठ कर बहुत नहाया।

ऊपर डाला धोय मैल दिल बीच सामान।

पाथर में गयो भूल सन्त का मरम न जाना।

पलटू चहुं दिशि पचि मरे घट ही में है राम।

सात पुरी हम देखिया देखे चारो धाम।

एक सन्त कह रहे थे कि चले कि भटके बस रूके कि पहुंचे। परमात्मा इसलिए नही मिलता कि दूर है, बल्कि इसलिए नही मिलता कि हमसे भी अधिक हमारे निकट है।

दर्शन के लिए आंख खोलते ही परमात्मा ओझल दूर हो जाता।

भगवान ने कहा है कि जो पुरूष सम्पूर्ण भूतों में आत्म रूप सुदेव परमात्मा को देखता है और सम्पूर्ण वासुदेव परमात्मा के अन्तर्गत देखता है उसके लिए परमात्मा कहीं अदृश्य नही होता।

सब में परमात्मा को देखनास आत्मा के रूप में ही परमात्मा का भरण रखना भगवान ने भजन बताया है। लाखों साधक माला में नाम जपने को तथा भगवान से सम्बन्धित गीत गाने को ही भजन मानते है।

भगवान ने स्पष्ट कह दिया है कि जो नाशवान नह है अक्षर है जो जड़ नही नित्य चेतन स्वरूप है जो अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम है इस सत् परम तत्व को जान कर सर्वभाव से ज्ञानावान ही परमात्मा को भजता है।

शास्त्र में यह भी निर्णय है कि जब तक लोक वासना है तथा शास्त्र वासना है एवं देह वासना है अर्थात जो संसार में अपने को सर्वोपरि श्रेष्ठ देखना चाहता है या सर्वोपरि वेद शास्त्र का ज्ञान विद्वान होना चाहता है या सर्वोपरि सुन्दर देह का सुरक्षित रखने चाहता है तब तक आत्म ज्ञान प्रकाशित नही हो सकता ।

भगवान के मतानुसार कोई वेद शास्त्र कठ्स्थ कर ले जगत भर का गुरू बन जाय शास्त्रार्थ में विश्व विजयी हो जाये कथा प्रवचन से हजारो श्रोताओं को सम्मोहित कर ले लेकिन जब तक भीतर अभिमान है दम्भ है या तन से वाणी से अपने सुख को लिए किसी प्राणी को दुख पहुंचाता है जब तक क्रोधी लोभी है कही आसक्ति है गुरोपासक नही है अन्तः करण में चंचलता है अहंकार है तथा जब तक दुखी होने पर अपने दोषो को नही देखना है वस्तु में ममता है मन में बुद्धि में विषमता है अनेक में प्रीति है एकान्त सेवी नही है। आत्मा के ज्ञान में बुद्धि स्थिर नही है देहादि पदार्थो में ममता है तब तक ज्ञान में जाग्रत नही हो सकता।

हमें सावधान किया गया है कि अनेक बार तुम्हें हानि का दुख होता है अथवा किसी अप्राप्ति का दुख होता है प्रायः अनेक प्रकार की कमियों का दुख होता है लेकिन अज्ञान रहने का और आत्मा के ज्ञान न होने का दुख नही होता ।

तन को या वस्त्रों को केशो को हाथ पैर को लोटा, थाली, गिलास को तथा रहने के स्थान को मलिन देखकर दुख होता है उन्हें शुद्ध करने का दृढ़ संकल्प होता है लेकिन मन मलिन है तथा चित्त अशुद्ध है बुद्धि मोह रूप कीचड़ से सनी है इसकी दुख नही होता ।

मन्दिरों में कोई भी अज्ञान से दुखी होकर अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए तथा बुद्धि की शुद्धि के लिए प्रार्थना करते नही मिलता। इसीलिए सदग्रन्थों के पाठ का तथा सदुपदेशों का सन्त सम्मेलनों का प्रभाव मन पर पड़ता है मन अच्छे सुन्दर बोलने वालो पर सम्मोहित होता है परन्तु बुद्धि ज्यों की त्यों वासना से ही सनी रहती है।

भगवान ने भक्ति चाहने वालो को सर्व प्रथम बुद्धि को विशेष शुद्ध करने की शर्त रक्खी है परन्तु गीता पढ़ते वर्षो बीत रहे है कौन साधक है जो बुद्धि को शुद्ध करने का संकल्प कर रहा हो ?

हम अनेक साधक सावधान होकर यह भी नही देखते है कि कर्म से जो मिलेगा वह कभी मिलेगा जगत में जो मिलेगा वह भी कभी मिलेगास । लेकिन परमात्मा का जो कुछ भी है वह अभी मिला हुआ है । कोई बिरले ही विवेकी सावधान होकर देखते है । जो नही मिला है उसका चिन्तन करते है । गुरू देव सावधान करते है कि ज्ञान में अभी देखों, कि ऐसा क्या क्या मिला है, जो तुमने नही बनाया है।

अभी है देह, अभी है प्राणों की गति, अभी है शक्ति, अभी है मन चित्त बुद्धि अहंकार अभी है इन्द्रियां, अभी है जीवन अभी है

अज्ञान, अभी है ज्ञान, अभी है बन्धन अभी है, मुक्ति अभी है संसार, अभी है आत्मा अभी है अंहकार अभी है परमात्मा ।

जो अभी है उसे अभी देखना है।

आत्मा तो निरन्तर परमात्मा में ही है और देह संसार की है वह संसार में ही समापत होनी है।

गुरू ज्ञान में यही दिखाया गया है कि जब तुम्हें मुक्ति की आवश्यकता हो तब अपने को दृष्टा जान लेना और कर्ता, भोक्ता, अहंकार को समझ लेना । दृश्य को देखना और बीच बीच में देखने वालो को भी देखते रहना । चेतना ही दृष्टा है।

चैतन्य को किसी वस्तु से जोड़ देने पर अहं के आकार बने है मिलावट में ही अशुद्धि है।

यदि तुम कुछ न बनो तब द्वन्द्वातीत नाम रूपातीत चेतन तत्व परमात्म ही शेष रहता है । वही ससंग है निराकार है विश्व मात्र का साक्षी है।

जब तक तुम अपने को कुछ मानते हो तब तक भय चिन्ता दुख से बच ही नही सकते । मन की मान्यताआपें को अस्वीकार करके देखो। तुम नित्य मुक्त ही हो।

असड़ोगसि निराकारो विश्व साक्षी सुखी भव।

तुम अभी कुछ समय तक संग रहित होकर आकार छोड़कर निराकार चेतन होकर सर्व साक्षी होकर सजह सुख का अनुभव कर सकते हो यह अष्टावक ऋषि ने कहा है।

भूमि, आकाश सब मिले हुए प्रतीत होते है परन्तु कभी मिल ही नही सकते इसी प्रकार जड़, देह और चेतन, आत्मा मिले हुए एक ही प्रतीत होते है परन्तु कभी मिले ही नही। (एको विशुद्ध बोधोहमिति) निश्चय करो कि मैं एक हू विशुद्ध चेतन हूं बोध बरूप हूं।

प्रकाश सभी को प्रकाशित करता है लेकिन सबसे असंग है । ज्यों ही तुम कुछ बनते हो त्यों ही पराधीन हो जाते हो, बनने के कारण ही शोक, मोह, भय क्रोध राग द्वेषादि दोषो से ग्रसित होना पड़ता है।

अभी देखो मन चच्चल है शरीर प्राण गतिशील है लेकिन चेतन अचल है।

चेतन आत्म साक्षी है, व्यापक है सब में पूर्ण है, अद्धितीय है मुक्त है निष्क्रिय है असंक है निष्पृह है शान्त है भ्रम के कारण संसारी प्रतीत होता है । मनोमय अंहकार ही दुखी सुखी होता है। तुम ज्ञान स्वरूप हो इसीलिए चाहे जब अहंकार ओढ़ लो, बन्धन में पड़ जाओं और चाहे जब असंग हो जाओ मुक्त हो जाओं, माया परमात्मा की अदभुत शक्ति है। चाहे तो बन्धन बढ़ा ले चाहे तो मुक्त हो जाए।

एक सन्त ने बताया कि तुम लाख बार समझों कि हम परमात्मा से अलगहै परन्तु हो नही सकते और लाख बार सोचो कि हम शरीर से

जुड़े है पर जुड़ नही सकते । जिसके बिना तुम रह ही नही सकते अथवा कुछ हो ही सकते। जिसके बिना तुम रह ही उसे जान लो और उसे ही ध्यान में रहने दो तभी मुक्ति, भक्ति का आनन्द सुलभ होगा।

जब तक ज्ञान स्वरूप अहं विनाशी नाम रूपमय आकारों को स्वीकार किये हुए है तब तक अहंकार द्वारा कर्म होते ही रहेंगे। जब अहंकार रहित होगा तब भी कर्म होते रहेगे परन्तु कर्ता भोक्ता नही रहेगा। अनेके श्रद्धावान श्रोता सब कुछ छोड़ने को तैयार होते है कोई कोई जन ग्रह परिवार को छोड़कर तीर्थो में आश्रमों में चले जाते है परन्तु अहंकार को नही छोड़ पाते इसीलिए यह अहंकार ग्रहण का भोगी तो रहता ही है पुनः यह त्याग का भोगी बनता है ओढ़े हुए आकारों को त्यागे बिना आत्मा परमात्मा का योगानुभव नही हो पाता।

हम सभी साधकों को सदगुरू के उपदेशानुसार भगवान को अपना सर्वस्व मानते हुए भगवान केपरम हितकारी वचन भी मानना चाहिए।

करोड़ो जनों की संख्या के बीच से कुछ ऐसे जन है जो भक्त, सन्त महात्मा द्वारा भगवान के परम पावन वचनों को श्रद्धापूर्वक सुनते है सम्मोहित प्रभावित होते है लेकिन जो तब सन्देश उपदेश सुनते है उसे भूल जाते है और सुनाने वाले के नाम रूपधारी व्यक्ति को मन में भर लेते है उसी के मोही बन जाते है।

श्रोता श्रद्धालु को सावधान होकर अपनी इस अयोग्यता पर ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार सत्य से विमुख होकर व्यक्ति से मोह इसीलिए

होता है क्योकि मोही मन के ऊपर बुद्धि, विवेकावत ी नही है कोई भी साधक विवेक बल से मोह से छूट सकता है।

जब तक बुद्धि विकसित नही होती, बुद्धि में विचार करने की शक्ति नही होती और जब बुद्धि मोह लोभ, काम आच्छादित रहती है तब आध्यात्म ज्ञान को अथवा सदुपदेश को भगवान के कल्याणकारी वचन को ग्रहण नही कर पाती। इसीलिए जब तक अज्ञान का दुख नही होता और सदविवेक सदज्ञान की प्यास प्रबल नही होती तब तक गुरू वाक्य भगवद वाक्य ऊसर में बोए गये बीज की तरह व्यर्थ हो जाते है।

आज उपदेशक गुरूजन हजारों मिलेगे परन्तु अधिकारी जिज्ञासु श्रोता हजार में एक मिलना दुर्लभ है।

यहां जो भगवान को मानने वाले तथा सन्त महात्माओं के प्रति श्रद्धा रखने वाले गुरूदेव की तन मन धन से सेवा करने वाले तथा रामायण गीता भागवत आदि धर्म ग्रन्थों को पढ़ने सुनने वाले एवं तीर्थो में मन्दिरों में आस्था विश्वास रखने वाले सन्त सम्मेलन में सत्चर्चा सुनने वाले भगवद नाम जप संकीर्तन कने वाले।

दह हजार जनों के बीच में एक दो व्यक्ति भी श्रद्धालु मिल जाये तो आश्चर्य होता है।

बड़े पुण्य के सुयोग से अहंकार श्रद्धापूर्वक कही कही झुकता हुआ दिखाई नही देता है यही अहंकार श्रद्धापूर्वक कहीं कही झुकता हुआ दिखाई नही देता है यही अंहकार कभी प्रेम से पसीजेगा पिघलेगा अन्त

में गुरू की उपासना से मिलेगा। अहंकार की वासनाये ही उपासान में बाधक बनती है।

हमें समझाया गया है कि यदि तुम कई जन्मों से गलते वाले कठोरतम अहंकार को इसी जन्म में गलाना चाहते हो तो सावधान होकर अब जो कुछ भी वस्तु व्यक्ति योग्यता अथवा शक्ति सम्पत्ति सुलभ है उसे अपनी न मानो तभी अहंकार आकार रहित हो सकेगा।

स्मरण करते रहो कि जो कुछ मिला है या आगे मिलेगा वह निश्चित ही छुटेगा और तैयार रहो कि सब कुछ छुटने पर परमात्मा ही शेष रहेगा वह नही छुट सकता हम परमात्मा के ही है परमात्मा में ही है। जब बुद्धि शुद्ध हो जायेगी तब स्पष्ट अनुभव होगा कि परमात्मा ही हममय है लेकिन हम परमात्मा के योगस्थ ने रह कर विनाशी नाम रूपाकार बन रहे है यही हमारे द्वारा असत संग चल रहा है।

जिस प्रकार अगाध सागर में अनन्त तरंगे उठ रही है उसी प्रकार अनन्त सत् चित् ब्रम्हा में अहं रूपी तरंगे उठ रही है और प्रत्येक तरंग भिन्न अकारों को पकड़ रही है। यही अहंकार का रूप है। तुम यही स्मरण करो कि मैं जिसका हूं वह सत है चेतन हैं आनन्द है तब तो मैं भी असत नही हूं जब नही हूं, दुख नही हू। मैं भी वही हूं जो वह है।

भगवान ने बता दिया है कि समस्त जीव मेमरे ही अंश है। जिस प्रकार प्रत्येक किरण सूर्य का अंश है उसी प्रकार हम तुम सब परमात्मा चिदंश है।

हमें सांवधान किया गया है तुम सच्चिदाननद घन स्वरूप अनन्त सूर्य की किरण हो कभी भिन्न नही हो सकते लेकिन अज्ञान में अपने परमाश्रय से विमुख होकर जो अपना नही है उ तन धन परिवार को अपना मान कर मोही लोभी, अभिमानी बन रहे है हो अब ज्ञान में सावधान रहने पर ही मुक्त हो सकते हो।

जिस दिन से तम अहं ज्ञान स्वरूप को परमात्मा से भिन्न देखोगे उस दिन से सब कुछ परमात्मा मेंही होते देखोगे तब कर्त्ता भोक्ता अहंकार से मुक्त हो जाओगे फिर अहंकार भी गल जायगा और बरफ की भांति गलकर अनन्त सागर से अभिन्न हो जायेगा।

सागर में बर्फ की चटटानों अलग प्रतीत होती है लेकिन जब गल जाती है तब सागर में ही उठती है गिरती है मिलती है।

संसार में सभी नर नारी परस्पर अहंकार को जमाते रहते है और कठोरता के कारण टकराते रहते हे। उपदेशक समझाते रहते है कि आघात मत करो शोर मत करो लेकिन कठोरता मिटे बिना, गले बिना संसार में आघात प्रत्याघात शोर गुल संघर्ष समाप्त हो ही नही सकते एक ही उपाय है कि प्रेम से गलो मिलो । या फिर ज्ञान में साक्षी दृष्टा होकर देखो तब अहंकार का आकार ज्ञान रूपी ताप से पिघलेगा गलेगा।

मन की चिकित्सा

विरक्त आत्मज्ञान

विरक्त आत्मज्ञानी निष्काम प्रेमी, शान्त मन एवं निरभिमानी भक्त के संग से सदगुणो का विकास तथा दोषो का नाश होता है ऐसा संग बहुत पुण्य से मिलता है।

लोभी मोही अभिमानी, ईर्ष्यालु द्वेषी कामी, क्रोधी बकवादी, आलसी प्रमादी, असंयमी की संगति से दोशो की पुष्टि होती है।

जो भगवान को समग्र प्रेम में भर लेते है वह सत्‌चित स्वरूप में विश्राम पाते है । जो श्रद्धापूर्वक गुरू की उपासना करते है वह सदगुरू के संग से अपने साथ दुखद दोषो को देखते हुए दोषो से मुक्त हो जाते है।

भगवद दर्शन का फल है स्वरूप में स्थिति और सदगुरू दर्शन का फल है अहंकार से मुक्ति ।

लाखों शिष्य गुरू भक्त गुरू दर्शन करते है परन्तु किसी–किसी श्रद्धावान को यह ज्ञात होता है कि सदगुरू का दर्शन बाहर की आंख से नही होता ।

सदगुरू कृपा में अधिकार प्राप्त करने वाला शिष्य ही सदगुरू के ज्ञान स्वरूप का दर्शन कर पाता है।

सदगुरू वही है जिसके माध्यम से परमात्मा और आत्मा की अभिन्नता का बोध होता है। शिक्षा गुरू अनेक है, दीक्षा गुरू एक ही है।

गुरू लोभी शिष्य लालची दोनो खेले दावं।

दोनो डूबे वापड़े बैठ पथर की नाव।

गुरू जन जाका है गृही चेला गृही सो होय।

कीच कीच से धोवते दाग न छूटे कोय।

बन्धे को बन्धा मिला छूटे कौन उपाय।

सेवा कर निर्बन्ध की पल में देय छुड़ाय।

ज्ञान हीनो गुरूस्त्याज्यः मिथावादी विडम्बकः

स्वविश्रान्ति न जानाति पर शान्ति करोति किम ।

जब यह निश्चय हो जाये कि गुज्ञ अज्ञानी है तब समझाना चाहिए कि अभी गुरू मिले ही नही । अज्ञानी समझ कर उसकी निन्दा न करो और उसका संग छोड़ दो क्योकि अज्ञान के कारण जो स्वयं शान्त नही है वह दूसरों को शान्ति का ज्ञान न दे सकेगा।

यहां जगत में करोड़ो लोग अन्धे के सहारे चल रहे है। एक देखने वाले ज्ञानी ने कहा कि धन या पद अथवा स्त्री या काम, क्रोध अन्धा नही बनाते । तुम अन्धे हो इसलिए इन्हें देख नही पाते अन्धे हो इसीलिए इन सबका सहारा लेकर यात्रा कर रहे हो। स्वयं को जानते नही हो दूसरो को रहे हो।

करोड़ो मनुष्य तीर्थो में नही जाते, मन्दिरों में नही जाते, यज्ञ, दान ब्रत नही करते, साधु सन्त भगवान को नही मानते, आत्मा परमात्मा की चर्चा भी नही सुनते उन्हें कभी भी धन की तथाबल की एवं प्रिय सुखद संयोग की कमी मालूम पड़ती है ऐसे करोड़ो लोगो को इच्छानुसार स्वादिष्ट भोजन की, सुन्दर वस्त्रों की, सोना चांदी तथा भूमि भवन की एवं उच्च पदाधिकार की विद्या की और अनेक प्रकार की शारीरिक सुविधा सुख देने वाली सामग्री की कमी को दुख होता है परन्तु जीवन में सदुगुणो की तथा आत्म ज्ञान की एवं निष्काम प्रेम की कमी का दुख नही होता।

लाखों मनुष्य ऐसे है जिन्हें अपने से अधिक बलवान, धनवान,विद्वान भूमिवान रूपवान, कुलवान, पदवान दीखता है लेकिन उन्हें कोई शक्तिमान वर दाता मुक्तिदाता देवी देवता भगवान का पता नही है उनके हृदय में श्रद्धा विश्वास पूज्य भाव की जाग्रति होती ही नही।

ऐसे करोड़ो लाखों में से सब मनुष्य विशेष हदृयवान है जो तीर्थ मानते है श्रद्धा विश्वास आस्था से प्रेरित होकर मन्दिर में जाते है, मस्तक झुकाते है अपने कल्याण की आशा रखते है।

जो आशा विश्वास के साथ तीर्थो में स्नान करते है तथा मन्दिों में दर्शन करते है कुछ द्रव्य चढ़ाते है उनसे वे लोक अधिक विचारवान है जो विद्वानों के मुख से देवी देव भगवान की कथा सुनते है।

उनसे भी अधिक विद्यावान वे है जो सन्त महात्मा में श्रद्धा रखते है उनके दर्शन करते है और सत चर्चा सुनते है । उनसे भी अधिक वे पुण्यवान है जो किसी महात्मा से ज्ञान प्राप्त के लिए महात्मा में गुरू भाव रख कर शिष्य होकर सेवा में तत्पर रहते है।

उनमें से कोई उत्तम अधिकारी साधक है जो गुरू कृपा से आत्म ज्ञान प्राप्त करते हुए देहाभिमान से छूटकर आत्म भाव में दृढ़ रहकर ब्रहात्मैक्य बोध से निरन्तर आनन्दनुभूति से तृप्त रहते है।

पशुमय चेतना को मानवता दिव्यता के पार परमात्मा ब्रहाम्य होने में हजारों लाखो जन्म लग जाते है।

तत्वविद ऋषि कहते है –

रस्सी में सांप देखने का भ्रम ज्ञान से ही मिटता है इसी प्राक देह को ही आत्मा मानने का भ्रम आत्मा के ज्ञान से ही दूर होता है इसीलिए हर समय ज्ञान में ही देखने का अभ्यास दृढ़ रखना आवश्यक है । परन्तु विस्मृति से बचना है।

परमात्मा ब्रम्हा हृदयरूपी गुहा में अन्तरात्मा रूप में निरन्तर विद्यमान है इस महादेव को छोड़कर बाहर अन्य देवों के दर्शनार्थ दौड़ने वाले विवेकहीन है।

मन से ही सब कर्म उत्पन्न होते है। मन ही कामनावश अनेक पापों में लिप्त होता है इस मन को वैराग्य और अभ्यास से वश में करना चाहिए यह भगवान की सम्मति है।

लाखों नर नानी तन की चिकित्सा के लिए बहुत प्रयत्न करते है परन्तु दुर्भाग्यवश मन कि चित्सिा का ध्यान ही नही होता।

ईश्वर को तथा सन्त महात्मा काके परम पूज्य मानते हुए अनेक शिक्षित व्यक्ति कोई पुत्र को कोई पति को कोई पत्नी को निरोग होने की प्रार्थना करते है, आर्शीवाद चाहते है परन्तु उन्हें अपने मन को रोग ग्रस्त होने का ज्ञान नही होता । अनेक गुरूभक्त शिष्य भी मन की चिकित्सा के लिए तैयार नही होते।

तन की चिकित्सा वैद्य डाक्टर होम्योपैथी, नेचरीपैथी आदि अनेक प्रकार से रोगी जन अपनी मान्यता के अनुसार करते है इसी प्रकार मन की चिकित्सा भी अनेक प्रकार से प्रचलित है।

कर्म योगी भक्तियोगी ज्ञान योगी, हठ योगी, राजयोगी गुरूजन अपने–अपने अनुभव के अनुसार मन की चिकित्सा करते है इसमें संयम, त्याग, तप सेवा प्रेम का आश्र रहता है।

मन्दि, मस्जिद, गिरिजाघर, कीर्तन भवन, सत्संग भवन, रामायण भवन,गीता भवन, वेदान्त आश्रम, आर्य समाज, सनातन धर्म भवन बौद्ध मन्दिर तथा अनेक तीर्थस्थान, शिव मन्दिर, राम मन्दिर देवी मन्दिर आदि जितने भी पूज्य स्थान है इनमें अपनी मान्यता के अनुसार लाखों

करोड़ो नर नारी जाते है यह सब मन के रोगी है। सभी लोग कुछ न कुछ मांगने ही जाते है। यदि कुछ देते भी है तो उसके बदले में कुछ अधिक पाने की आशा विश्वास के साथ देते है।

अधिकतर रोगी की चिकित्सा करने वाले हजारों चिकित्सक स्वयं ही मन के रोगी ही मिलते है।

सदगुरू ही भवरोग की निवृत्ति कराने वाला सच्चा परम हितैषी वैद्य है। सदशिष्य वही है जो संसार के संग से महारोगी मन से दुखी होकर मन कि चिकित्सा से तत्पर है जिसे सदगुरू के वचनोपचार पर विश्वास है एवं ज्ञान रूप में अटूट श्रद्धा है। जिनकी देह में आसक्ति है जो देह की पूजा आरती करके या चित्र फूल माला चढ़ाकर सन्तुष्ट होते है वे सदगुरू के पासक नह है वे तो अपनी रूचि पूर्ति के ही पुजारी है। ज्ञान स्वरूप सदगुरू की उपासना आराधना के लिए देह तो मूर्ति के समान माध्यम है लेकिन कोई मूर्ति में ही प्रीति को अट्काये रहता है वह गुरू ज्ञान की उपासना बुद्धि द्वारा नही करता है वह शिष्य मूढ़ ही बना रहता है क्योकि गुरूज्ञान में अपने अज्ञान को देखकर रूचिपूर्ति में सुख मानता है।

श्रद्धालु जन नेत्रों से देह का दर्शन करते है मन से गुरू के सदभावो के सदगुणों का मनन करते है तथा चित्त से सदगुरू पावन चरित्र का चिन्तन करते है और बुद्धि को गुरू ज्ञान से प्रकाशित करते हुए अहंकार को गुरू के चिन्मय स्वरूप में समर्पित करते है।

जब चकित्सा करने वाले पण्डित, पुजारी पण्डा मठाधीश तथा इनके साम्प्रदायिक परोहित पादरी मुल्ला, कथा वाचक, व्यास अथवा साधु सन्तमहात्मा वेष में उपदेशक गुरू जन स्वयं ही लोभ मोह काम क्रोध अभिमान ईर्ष्या द्वेषादि रोग से ग्रसित है तब उनके द्वारा किसी के रोगो मन की चिकित्सा समुचित ढंग से होना रोगी के बहुत अधिक पुण्य का ही प्रताप माना जायेगा।

कभी कभी स्वादिष्ट पकवान मिष्ठान बनाने वाले बहुत अच्छी मिठाई बनाने बेचने वाले स्वयं ही खाते परन्तु सैकड़ो लोग उसका स्वाद लेकर सन्तुष्ट होते है। परन्तु इस प्रकार के लोग भी भोगी बने ही रहतेत है ऐसी दशा वालो का मन रोग मुक्त नही होता।

मन का सही चिकित्सक और सही चिकित्सा तभी समझों जब मन में लोभ मोह काम क्रोध ईर्ष्या द्वेषादि विकारों की निवृत्ति होती जाये उदारता, निष्काम सन्तोष, श्रद्धा एवं अनासक्ति, निर्ममता, निरभिमानता और आत्मज्ञान आदि दैवी सम्पदा की पूर्ण वृद्धि हो जाये।

ज्ञान रूप गुरू का आश्रय लेकर अनेक श्रद्धालु छोटे से बड़े हो गये। खोटे से खरे हो गये। कठोर से कोमल हो गए और जो भयातुर थे वह निर्भय हो गये। अविवेकी थे वह विवेक हो गए तुम भी गुरू का आश्रय लेकर नित्य प्राप्त परम प्रभु की उपासना करो उन्ही की स्तुति करो दुखी होने पर प्रार्थन ाकरों प्रार्थना में मन न लगने पर मन लगने पर मन लगने के लिए प्रार्थना करों। इस गुरू सन्देश को भी याद रखो

मान लेते रहने से दानवी बल बढ़ता है। धन जोड़ते रहने से राक्षस का बल बढ़ता है। भोगेच्छा पूरी करते रहने से आसुरी या पशुबल बढ़ता है। इसके विपरीत देने योग्य सुपात्र को मान देने से अधिकार देने से, धन देने से देवताओं का बल बढ़ता है। जो दान देने योग्य को सदा देते रहते है वही देव है। जो जोड़ते है रक्षा ही करते रहते है वह राखस से जो छीनते लूटते रहते है वह प्रेत पिशाच है। वह नर रूप में बानर है।

आप सावधान होकर सात्विक बुद्धि द्वारा ही इस सत्य को समझ सकते हो कि शुभ के पीछे ही अशुभ तथा धर्म की ओट में ही अधर्म एवं सत्य का सहारा लेकर असत्य, साधु का वेष धारण कर असाधु त्याग का रूपक लेकर राग, देवता के वेष में राक्षा असुर अपना स्वार्थ सिद्ध करते है।

यज्ञ, तप, जप, ध्यान, ज्ञान योगाभ्यास कोई भी असुर राक्षस कर सकता है।

आज राक्षस, असुर, प्रेत, पिशाच, दावन, यक्ष बाहर किसी को भले ही दिखाई नही देते हो परन्तु यह सब मनुष्य के भीतर छद्य रूप से अपनी ामना वासना पूर्ण करते रहते है।

मनुष्य देह एक ऐसा माध्यम है जिसके सहारे देवता तो अपनी पूर्ति करते ही है साथ ही दानव असुर पिशाच, पशु भी अपनी–अपनी सीमा बनाये हुए है। गुरू विवेक के जाग्रत होने पर ही भिन्न–भिन्न शक्तियों के आक्रमण अधिकार का पता लग पाता है।

अनेको आसुरी दानवी, राक्षसी, शक्ति वृत्तियों के ऊपर अति शक्ति सम्पन्न अहंकारी रूपी यक्ष है जब तक यह यक्ष यज्ञ, तप, दान पाठ पूर्जा आदि सत्कर्मो का कर्ता बनता है तब तक परमात्मा की विमुखता के कारण यह अहंकार ही सब कुछ का भोक्ता बनता है।

यदि दुखों से मुथ्कत की ओर परमानन्द की अभिलाषा प्रबल हो तो संसार में सन्त सदगुरू का अभाव नही है लेकिन सदशिष्य मिलना बहुत ही दुर्लभ है।

गुरूज्ञान दुर्लभ नही है गुरूज्ञान की प्यास दुर्लभ है। सत्य परमात्मा दुर्लभ नही है सत्य परमात्म के प्रति प्रेम दुर्लभ है और आकांक्षा दुर्लभ है।

जो नित्य निरन्तर है इस है को ही परमात्मा कहते है। इस परमात्मा को जो भी अभी है ही इसे समझने वाले तत्वदर्शी ज्ञानी, विज्ञानी बहुत दुर्लभ है।

जो कुछ परमार्थ की सिध्दि में तथा परमानन्द की प्राप्ति में अथवा योग में सहायक होता है वह है शुद्ध अहंकार तथा शुद्ध बुध्दि अथवा चित्त है। यदि एक वाक्य में कहा जाये तो शुद्ध मन है।

सदगुरू की कृपानुभूति का अधिकार प्राप्त करने पर मन शुद्ध होता है। शुद्ध मन दैवी सम्पदा से ही तृप्त होता है। दैवी सम्पदा की प्राप्ति तभी समझना जब इन्द्रिया संयम, अनासक्ति से सुलभ निर्भयता स्वाधीनता प्रसन्नता, उदारता पूर्वक दान, ज्ञान यज्ञ, गुरू वाक्यों का

अध्ययन , चित्त की शान्ति धैर्य, पवित्रता क्षमा, सन्तोष दृढ़ श्रद्धा, साधना में तत्परता आदि दिव्य गुणों से अन्तः करण पवित्र रहता है।

जब तुम विनाशी असत नाम रूप मय देहादिक पदार्थो में बैठ जाते हो तब तुम असत संगी हो और जब तुम अपने पाप में स्थिर होते तब तुम निरन्तर आत्मवान हो। तुम बलवान धनवान, विद्यावान, रूपवान कुलवान और नीचे उतर कर अनेक उपाधिवान बनकर कितने सुख दुख भोग चुके हो अब प्रज्ञावान होकर स्यं में स्थित होकर देखो। अभी अभी तुम आत्मवान होकर अनुभव करो कि हम निरन्तर अखण्ड अनन्त आनन्द स्वरूप परमात्मा के साथ ही है इसी को ज्ञानी सत्पुरूष उपासना कहते है । यदि स्मरण रहे तब कुछ भी बाहर पशु पक्षी वृक्ष फूल कांटे शत्रु मित्र दुखो, सभी में परमात्मा की शक्ति को सत्ता को चेतना को न भूलो।

तुम अभी इस क्षण मन में उतरकर मन से विमुख होकर देखों तो परमात्मा के सम्मुख हो। जहां कुछ देखने को तथा छोड़ने को शेष नही रहता वही आत्मा परमात्मा ही शेष है । अज्ञान में जो दीखने वाला दृश्य प्रतीत होता है वह तभी तक सत्य सा लगात है। जब देखने वाला अपने आपको नही देखता।

अच्छे विद्वान ही इस तथ्य को जानते है कि कभी कभी जल वायु तथा अधिक शीत या अधिक धूप के प्रभाव से ज्वर खांसी जुखाम या पेचिस बवासीर आदि अनेक प्रकार के रोग शरीर में प्रकट हो जाते है

वह बाहर से नही आते बल्कि जो विकार भीतर होता है वही उभड़ जाता है यदि भीतर विकार नही होता तब जलवायु शीतता ऊष्णता का प्रभाव नही पड़ता । इसी प्रकार जिनके मन में काम क्रोध घृणा लोभ ईर्ष्या द्वेषादि विकार अहंकार के साथ भीतर हो जाते है । सड़ं के प्रभाव से ही श्रद्धा उदारता दया करूणा, निष्काम सेवा भाव तथा निस्वार्थ प्रेम अथवा भगवत भक्ति भावना अथवा सदविवेक और तत्वज्ञान आदि दिव्य गुण भी अनायास ही जाग्रत हाते है।

जिस संगति से दोषो की अर्थात काम क्रोध लोभ अभिमान आदि कीह पुनरावृत्ति होती रहे खूराक मिलती रहे उस संग का त्याग करके सज्जन साधु का संग करना आवश्यक होता है।

हम साधकों को यह गुरू निर्देश बहुत सावधान होकर समझ लेना चाहिए–

देवासुर संग्राम में देवता अर्थात दैवी शक्तियां आसुरी शक्तियों को सामने होकर पराजित करती है लेकिन दैवी शक्तियों को पराजित करने के लिए आसुरी शक्तियों का आक्रमण पीछे से छल कपट पूर्वक होता है इसीलिए दैवी शक्तियां पराजित होते हुए भी आसुरी वृत्तियों को नही देख पाती है।

श्रद्धा एक दैवी गुण है उसके पीछे अश्रद्धा आ जाती है और श्रद्धा को भगा देती है यह आसुरी शक्ति है।

उदारतापूर्वक दान करना दैवी गुण लेकिन इसके पीछे लोभ वृत्ति दान देने में रोक देती है, वह अधिक देने में रोक देती है वह अधिक देने को मना करके कम से कम देने का राजी कर लेती है यह लोभ, राक्षसी शक्ति है।

सत्य आत्मा, परमात्मा, भगवान, भगवती परम शक्ति के प्रति आस्था, निष्ठा सम्पर्ण दिव्य गुण है परन्तु इन दिव्य गुणों से विचलित करने वाली अनात्मा में अर्थात देहादिक विनाशी वस्तुओं में आसक्ति अथवा आस्था विनाशी में ही विश्वास, आसुरी शक्ति है, जो सत्य आत्म के प्रति आस्था को, विश्वास को डिगा देती है।

हमें यह भी समझाया गया है कि यदि तुम प्रभु कृपा से होने वाले पुण्य दान यज्ञ, तप त्याग, जप स्मरण तथा सत्कथा व्याख्यान आदि सत्कर्मो को अहंकार पूवर्क गर्व युक्त होकर करते हो तब तो इन सभी शुभ कर्मो का फल दानवी आसुरी राक्षसी शक्तियां भोगती रहेगी, देवता इन यज्ञादि कर्मो से सन्तुष्ट पुष्ट न हो सकेंगे।

प्रायः हम अनेकों साधनाभिमानी जब किसी असत संगी नास्तिक को साधना प्रार्थना पूजा जपादि न करते हुए धन धान्य तथा सुन्दर परिवार एवं पदाधिकार यश वैभव से सम्पन्न देखते है तब अपने धर्म एवं सत्कर्म में संशय होने लगात है यह भी आसुरी वृत्ति का ही आक्रमण है।

हम जप पूजा पाठ करते है भगवद कथा सुनते है सन्तो का संग भी करते है फिर भी लोभ, अभिमान एवं कामनाओ के पीछे ईर्ष्या , द्वेष, कलह क्रोध आदि विकारों के रूप में आसुरी दानवी शक्तियो का आक्रमण होता ही रहता है । हम साधकों को इन सभी आसुरी दानवी राक्षसी, शक्तियों को सावधान होकर पहिचानते रहना चाहिए।

यह भूल हो जाती है कि दानवी, राक्षसी, आसुरी शक्तियां हमारे ऊपर आधिपत्य जमा लेती है और हम इनसे प्रेरित होकर दुष्कर्म कर लेते है फिर भी इन्हें पहिचान नही पाते ।

जब साधक में धन लेने का लोभ मिले हुए धन को दान का देने का अभिमान प्रबल होता है तब राक्षसी शक्ति का अथक दानवी शक्ति का आक्रमण हो जाता है और उदारता दनशीलता रूप में दैवी शक्ति पराजित हो जाती है।

हम साधकों में कोई देवताओ के बलवान होने पर भूमि, भवन परिवार का त्याग कर विरक्त सन्यासी होने के पीछे अहंकार आ जाता है, जब अपने को सर्वपूज्य मान कर सभी से पूजा कराने की उच्चासन पाने की जैकारे सुनने की कामना प्रबल हो जाती है तभी दावनी शक्ति का आक्रमण समझना चाहिए इन आक्रमण से ही कई साधु सन्यासी उच्चासन के लिए अपनी अपनी पूजा प्रतिष्ठा के लिए सम्मेलनों में ही कलह क्रोध, ईर्ष्या द्वेष में भर जाते है ऐसे लोग दानवी माया से सम्मोहित होने की मनःस्थिति को नही देख पाते।

प्रायः साधारण गृहासक्तों की अपेक्षा आज बने हुए वेषधारी साधु सन्यासियों में अहंकार एवं लोभ अभिमान की मात्रा अधिक देखी जाती है।

जब तक कुछ भी करने का संकल्प उठता रहता है, जब तक कुछ भी पाने का देखने का लालच रहता है जब तक मरने का भय अथवा छूटने की चिन्ता रहती है तब तक अहंकार की ही माया है।

अहंकार जब तक अपने प्रयत्न से काम क्रोधादि विकारों को मिटते हुए देखता है तप तक काम क्रोधादि के त्याग का भोग यह अहंकार ही करता है।

तुमने नारद मुनि की कथा सुनी होगी। नारद मुनि ने तप के बल से कामदेव को जीता था और उसके पश्चात ही अहंकार को यह गर्व हो गया कि कामदेव को भगवान शिव ने ही नही परास्त किया मैने भी जित लिया है ऐसा सोचते तही वह अपनी काम विजय का परिचय देने ब्रम्हा शिव के पास गये और विष्णु की माया से वही नारद काम से पराजित हुए।

यह सन्त सम्मति है कि तुम अहंकार को छोड़ने का प्रयास न करके इसे देखने का प्रयत्न करो इसे देह के तथा मन, के बुद्धि के पीछे देखो। खोजने से यह कहीं मिलेगा ही नही। ध्यान से देखते रहने से यह ज्ञान होगा कि समस्त कर्म स्वतः ही परम सत्ता के प्रकाश से,

प्रकृति में हो रहे है। यह अहंकार भी प्रकृति का ही अंश है, इसे पार करने पर परमात्मा का बोध होता है। सन्त के वचन है –

सुन्दर मानव देह यह पायो रतन अमोल।

कौड़ी मोल न खोइये मान हमारे बोल।

बार बार नहिं पाइये सुन्दर मानुष देह ।

राम भजन सेवा सुकृत यह सौदा करि लेह।

सुन्दर बैठे नाव में कहां कहां ते आय।

पर भए कतहूं गए त्यों कुटुम्ब सब जाय।

हमें सावधान किया गया है कि आंख से तुम जिस सत्य के दर्शनार्थ उत्सुक हो वह सत्य तो आंख एक पीछे विद्यमान है। दृष्टा में ठहरों वही सर्वाश्रय परमात्मा है।

अभी जानों की देखने वाला, सुनने वाला, तथा हम हम कहने वाला कौन है? इसका क्या रंग है , क्या रूप है।

देह के जन्म लेने के पहले से ही जो तुम्हारे भीतर है उसे बाहर क्यों खोजते हो ? वह चेतन रूप में तुम्ही हो।

सावधान हो देखो – मन जब ठहरेगा कि मरेगा, इसलिए मन ठहरता नही। मन मरना नही चाहता । कुछ करते रहने में ही उसकी जिन्दगी है। इसीलिए करने के लिए मन भागता है इसे देखते रहो।

निरालम्ब ध्यान ही तो समाधि है।

अवलम्बन सहित ध्यान परापेक्षित अभ्यास है। जब सन्यासी शून्य होता है तभी पूर्ण परमात्मा का बोध होता है।

ज्ञानी सन्यासी के सामने दुख होता है परन्तु वह स्वयं दुखी नहीं होता।

तुम्हारे सामने जो कुछ भी आये आने दो और जो कुछ जाये उसे जाने दो तुम नित्य रहने वाले अपने चेतन स्वरूप के देखते हुए स्वस्थ रहो।

भूत भविष्य कितना ही दोषमय हो वर्तमान क्षण सदा पवित्र है निर्दोष है। तुम वर्तमान को देखो।

यदि तुम स्वयं में ही रमण करोगे तब चित्त निरोध की चिन्ता न रहेगी। पर पदार्थ में रमण करते हुए चच्वल चित्त को साधक निरोध करना चाहते है।

अनेक सन्यासी दण्ड धारण करके जाति तथा वर्ण कुल आदि का अभिमान नही भूल पाते ऐसे व्यक्ति का अहंकार ही सन्यासी बना हुआ है।

नित्य सन्यासी वही है जो अनित्य के सम्बन्ध में मुक्त हो जाये।

सन्यासी कौन है ?

सत्कार मान पूजार्थ दण्डकाषाय धारणः

स सन्यासी न वक्तव्यः सन्यासी ज्ञान तत्पर ः ।

जो अहंकार अपने मान के लिए तथा सत्कार्य के लिए काषाय वस्त्र एवं दण्ड धारण करता है उसे सन्यासी नही कहते है। सन्यासी वही है जो अपने ज्ञान स्वरूप आत्मा में तृप्त है सन्तुष्ट है।

जिसे संसार की अनित्यता का प्रगाढ़ अनुभव हो जाता है वही सच्चा सन्यासी होता है।

स्वेच्छा से मुर्दे के समा न जीवन बिताने को सन्यास कहा गया है। कोई गाली दे अपमान करे उसी समय याद आ जाये कि मैं तो सन्यासी हूं। कामना प्रबल हो तभी याद आ जाये कि अरे। मैं तो सन्यासी हूं।

सच्चा सन्यासी निरन्तर स्वस्थ रहता है आत्मस्थ रहता है वह देहस्थ मनस्थ नही रहता । सच्चा सन्यासी देह को चलते हुए बैठे हुए लेटे हुए देखता है वह मन को सुखी दुखी देखता है और अपने नित्य चेतन स्वरूप को सभी द्वन्द्वों से अलग अनुभव करता है।

सन्त कहते है – चोरी करना पाप है साथ ही संग्रह करना भी पाप है। अपना सर्वस्व समाज को सौंप देना सन्यास है।

ज्ञानवान सन्यासी केवल व्यवस्था बदलता है। क्षेत्र वही रहता है।

सच्चा सन्यासी संसार को नही छोड़ता वह परमात्मा को पा लेता है ऐसा सन्यासी असत्य को नही छोड़ता सत्य को पा लेता है।

ज्ञान में देखने वाले सन्यासी को यह संसर परमात्मा की प्रकृति का उत्सव दीखता है। सच्चा सन्यासी आत्मा को निरन्तर परमात्मा में देखते हुए आनन्दित रहता है। स्वस्थ रहता है। परम सन्तुष्ट रहता है। झूठा सन्यासी देहस्थ अस्वस्थ रहता है।

ज्ञान में दृष्टा सन्यासी गिरि गुहा की ओर नही भागता वह तो हृदय गुहा में उतरता है। चेतन स्वरूप में ठहरता है । फलासक्त, कर्मासक्ति को त्याग देता है। बाहर परमेश्वर की असली दुनिया है और मन के भीतर विचारों की दुनिया है। बाहर की दुनिया छोड़ने वाले हजारों सन्यासी है परन्तु भीतर की दुनिया छोड़ने वाले कोई विरले ही है। सच्चे सन्यासी वही हो पाते है जो देह छूटने के प्रथम मन से मर जाते है। जिस देह को मुर्दा को कभी चार कन्धे लेकर चलेगे उसे चेतन सन्यासी अहंकार को ढोते हुए देखता है।

ज्ञान स्वरूप अहं ही देहाकार बनकर अहंकार कहा जाता है। यह भी गुरू निर्णय है कि जो सन्यासी अशान्त होता है दुखी होता है। भयातुर चिन्ताकुल हो जाता है वह अन्दर में मन से असत संगी है। परम हंसोपनिषत में कहा है –

जिस सन्यासी ने आत्माज्ञान रूप दण्ड को धारण किया है वह एक दण्डी सन्यासी है और जो केवल काष्ठ के दण्ड को धारण करने

वाला आत्मज्ञान से रहित है तथा जो कहीं भी आसक्त है वह (असत संगी) दुर्गति को प्राप्त होता है । सत्य आत्मवेत्ता सन्यासी परमगति को प्राप्त होता है।

जिस सन्यासी ने मन वाणी, शरीर को वश में कर लिया है, जो पच्चकोषो से भिन्न आत्मा को जानता है जो ब्रम्हा से अभिन्नता का अनुभव करता है वह त्रिदण्डी सन्यासी है। भागवत में वर्णन है कि मौन रहना वाणी का दण्ड है। सकाम कर्म न करना यह देह का दण्ड है। प्राणायाम न करना यह मन का दण्ड है। इन तीन दण्ड से रहित केवल बांस के दण्ड को धारण करने वाला सच्चा सन्यासी नही है। (भा0 11. 18.17) कर्मो के त्याग को सन्यास नही माना गया है। जीव ब्रम्हा के अभेद ज्ञान में स्थिर बुद्ध होने पर सन्यास कहा गया है। सच्चा सन्यासी वही है जो संसार में रहते हुए भीतर संसार को न रहने दे। जो संसार में रहकर संसार का नही होता वही सन्यासी है। जो भवन धन कुटुम्ब का त्याग करता है वह भोगी गृहस्थ है। जो लोभ मोह अभिमान भय शोकादि का त्यागी होता है वह सन्यासी है।

सन्यासी जब तक त्याग के लिए कटिबद्ध रहता है तब तक अहंकार ही त्याग का भोक्ता बनता है।

सन्यासी का समग्र प्रेम आत्मा परमात्मा मय हो जाता है तब त्याग स्वतः हो जाता है उसे करना नही पड़ता।

सन्यास की पूर्णता त्याग से नही होती, वह तो आत्मानन्द ब्रहानन्द से होती है।

जहां आत्म ज्ञान पूर्ण होात है वहां ब्रहाम्ण कुलाभिमान नही रहता । कुलाभिमानी, दण्डाभिमानी त्यागाभिमानी अहंकार ही होता है नित्य सन्यासी अभिमान शून्य होता है।

सन्यासी स्वभाव में स्थिर रहता है। पर भाव का त्यागी होता है।

जो नित्य निरन्तर है उसमें ही स्थित रहकर जो भी हो रहा है उसे साक्षी रहकर देखना सन्यासी का आत्म दर्शन है। जो तन के साथ है वह गृहस्थ है। जो तन मन के असंग है वही सन्यासी है। नित्य सन्यासी में भीतर चेतना रहती है मन नही रहता ।

प्राप्त पदार्थो में ममता न रहने पर, अप्राप्त पदार्थो का चिन्तन मिट जाने पर अंह के आकार झड़ जाते है, यही असत से मुक्ति पा जाना है।

असत से सम्बन्धित संकल्प उठते ही जड़ता घनीभूत होने लगती है। उस जड़ता से चेतना ढकी रहती है पराधीनता बढ़ती जाती है और अहं ज्ञान आकारों को ओढ़ता जाता है इस क्रम से अपना मुक्त ज्ञान स्वरूप अहंकार के रूप में असत से आवृत्त रहता है।

संकल्प दो प्रकार के होते है। अशुद्ध संकल्प तो असत अनित्य जगत के नाम रूप से बांधते है। शुद्ध संकल्प असत सम्बन्ध से मुक्त करते है ।

अशुद्ध संकल्प के त्याग से शुद्ध संकल्प की पूर्ति का सामर्थ्य आता है। गुरू ज्ञान द्वारा ही शुद्धाशुद्ध संकल्पों को पता चलता है। सत्य की जिज्ञासा में और बन्धनों से मुक्त होने की प्रबल अभिलाषा में ही अशुद्ध संकल्प का त्याग सरल हो जाता है।

समस्त विकास असत से सम्बन्धित संकल्प की निवृत्ति पर ही निर्भर है।

जो भोगो से आसक्त नही है, जो कर्मो में आसक्त नही है, उस काल में सर्व संकल्पों का त्यागी पुरूष सन्यासी, योगारूढ़ होता है। (गी 6-4)

भगवान कहते है - ज्ञेयः स नित्य सन्यासी - उसे सदा के लिए सन्यासी समझना चाहिए जो किसी से द्वेष नही करता और न किसी की आकांक्षा करता है वह राग द्वेषादि द्वन्द्वो से रहित पुरूष सुख पूर्वक संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है।

आज अनित्य सन्यासी हजारों बन रहे है पर नित्य सदा के लिए सन्यासी कोई बिरले ही दीखते है।

जो विनाशी देहादिक पदार्थो के संयोग वियोग से रहित आत्मा परमात्मा के योग से नित्य युक्त है जो अपने शरीर को तथा इन्द्रियों को एवं अन्तः करण को शुद्ध करके विजितात्मा विशुद्धात्मा है वह सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मरूप परमात्मा का अनुभव करते हुए कर्म के साथ लिपायमान नही होता ।

नारद परिब्रजकोपनिषद में उपदेश है –

लौकिक वैदिक सर्व इन्द्रियों के विषयों को त्याग कर केवल आत्मा रूप से स्थिति रहने वाला सन्यासी परम गति को प्राप्त होता है।

भगवान कृष्ण का उपदेश है – जो मनुष्य आत्मा में प्रीति वाला है जो आत्मा में ही तृप्त है जो आत्मा में ही सन्तुष्ट है उसे किंचित मात्र कोई कर्तव्य नही है।

(सत् तत्व ही सर्व मय है)

ज्ञान सवरूप चेतन तत्व ही सर्वमय है और सब से अतीत ही परम आत्मा का अस्तित्व है वही मेरा अपना आप है।

जब एक ही सर्वमय है तब भय के लिए दूसरा कुछ है ही नही । यदि अहंकार को दूसरा कोई दीखता है तो वह अपनी ही कल्पना का रूप है और अज्ञान के कारण प्रतीत होता है। अज्ञान भी अपने से ही उत्पन्न होता है और अपने ज्ञान में विलीन हो जाता है।

ज्ञान स्वरूप चेतन तत्व ही सर्व सौर्दय मय है। सर्वत्र पूर्ण आनन्द, पूर्ण प्रकाश, समग्र माधुर्य, समग्र एश्वर्य इसी चेतन आत्मा का है।

सावधान होकर प्रज्ञा दृष्टि से परमात्मा के नियम को तो देखो। जिस नियम से प्रत्येक लघुतम बिन्दु प्रकृति परमाणुओं को समेट का विकसित होते होते खनिज वर्ग, वनस्पति पशु वर्ग की सीमाओं को पार करके मानव आकृति द्वारा अहंकार के रूप में प्रकट हो रहा है कैसा अदभुत महान चमत्कार है।

यह अहंकार लघुतम बिन्दु का सर्वोपरि विकसित रूप है और यही परम आत्मा के महान एश्वर्य माधुर्य सौन्दर्य के दर्शन की निराकर मूर्ति है। परम आत्मा में ही यह मूर्ति प्रगट होती है और परमात्मा को अपने आकार विस्तार से छिपाकर परमात्मा का अभिनय यह मूर्ति ही करती है और उसी के नियमसे अपने परमाश्रश्रय में विलीन हो जाती है, तब केवल परमात्मा ही पूर्ण शेष रहता है।

ज्ञान स्वरूप चेतन तत्व ही सर्वमय है यही अहंकार मय है और आकारें को छोड़कर अहंमय है यह अहं ज्ञान ही अन्त में अनन्त ब्रहामय है।

यह ज्ञान स्वरूप अहं अकारों को ओढ़कर अपनी कृतियों, परिस्थितियों को भोगी बनता है अपने ज्ञान द्वारा अहंकृतियों परिस्थितियों की सीमा से मुक्त होता है।

ज्ञान द्वारा ही अज्ञान जनित अस्वस्थता से मुक्त होता है।

अज्ञान में पाली पोसी गई अन्धी मान्यताओं स्वीकृतियों तथा अन्ध विश्वास में गठित धारणाओ से मुक्ति मिलती है तो ज्ञान द्वारा ही मिलती है।

ज्ञान में आत्मिक एकता का बोध होने पर सर्वनाम रूपों में प्रकाशित चेतना के प्रति आत्मीयता द्वारा प्रेम की धारा बहने लगती है।

हमें सावधान किया गया है कि ज्ञान से विमुख कर तुम अज्ञान में सत्य की शान्ति की आननद की बहुत खोज कर चुके हो अपनी प्रार्थना को दूर व्यापी बनाने के लिए माइक यन्त्र लगा कर पूरी शक्ति लगाकर अपने मन की कह चुके हो, अब प्रभु को पाने के लिए अपने पास ठहरों, प्रभु की बात सुनने के लिए तुम मन के कोलाहल को शानत करो आन्तरिक मौनप साधो प्रभु ससे मिलने के लिए अपने साथ अन्य सिी को न रहने दो तुम अनुभव करोगे कि परमात्मा प्रभु कभी भिन्न हुआ ही नही प्रभु में ही तुम चलते उठते बैठते रहे हो परमात्मा प्रभु में ही तुम बोलते सुनते रहे हो।

अनेक प्रेमियों ने भगवान की मूर्तियों बनवा ली मन्दिर बनवा लिये अहंकार सन्तुष्ट होता रहा, अब तुम ज्ञान में अहंकृतियों को पहिचानों, साथ ही परमात्मा की प्रकृति से जो हो रहा है उसे भी देखो, दृष्टा होकर तुम जान लोगे कि तुम स्वयं ही परमात्मा की सचेतन मूर्ति हो यह देह की परमात्मा की प्रकृति से निर्मित मन्दिर है इसी से

परमात्मा प्रतिष्ठित है। अहं के आकारों को हटाते ही उस चेतन आत्मा का अनुभव होता है जिससे यह अहंकार उत्पन्न हुआ है।

ज्ञान में अहं के आकारों को देखते हुए तुम इस अनादि अनन्त चैतन्य श्रोत को जान लो, यही तो समस्त गतियों का उदगम है।

सब कुछ परमात्मा में होते हुए देखना, अपना कुछ भी न मानना त्याग है। अपने भीतर अहं को परमात्मा में ही देखना समर्पण है।

अनन्त सत्य की अनुभूति में मैं हूं, यह अन्तिम महीन किन्तु अति सघन पर्दा है । इसे ही शास्त्र में अस्तिम कहते है। केवल अपने होने का बोध शेष रह जाये यही मुक्त ज्ञान स्वरूप है।

जब तक अहंकार देह से बंधा है तब तक गृहस्थ कहा जाता है । जो साक्षी होकर देखता है उसे गुरू जन सन्यासी कहते है। सच्चा नित्य सन्यासी हर स्वास धड़कन के साथ परमात्मा की सत्ता का परमात्मा के होने का स्मरण करता है।

धीर सन्यासी के सामने दुख होता है परन्तु स्वयं वह दुखी नही होता।

सदगुरू कहते है कि जो कुछ घटित हो उसी में स्वस्थ शान्त प्रसन्न रहो।

भविष्य और भूत काल कितना ही दोषपूर्ण हो परन्तु वर्तमान क्षण सदा पवित्र निर्दोश है। धीर वीर पुरूष वर्तमान नित्य शाश्वत सत्य को ही देखता है।

अहंकार भी परमात्मा की अनुपम मायिक विभूति है यह अहंकार परमात्मा की शाक्ति होने के कारण अपने आगे प्रथम किसी को मानता ही नही और जब होश आने पर परमात्मा का होना स्वीकार करता है तब अपनी शक्ति से परमात्मा को पाना चाहता है, परमात्मा की प्रतिमा बनाता है प्रार्थनाएं बनाता है। परमात्मा को दूर मान कर आवाज को बुलन्द बनाने के लिए माइक लगाता है। यह अहंकार कल्पना करता है कि माइक लगाकर प्रार्थना करने से नामज पढ़ने से जहां तक लोग सुनेगे उनका कल्याण होगा सुनने वाले भक्त मुक्त हो जायेगे। यह अहंकार यह भी नही देखता कि वर्षो बीत गए प्रार्थना करते पाठ करते लेकिन अपने भीतर जो काम लोभ, मएोह अभिमान था वह तो मिटता नही। अपने को दोषो से मुक्ति नही मिली परमात्मा दिखा नही तब पड़ोस के लोग माइक के द्वारा प्रार्थना सुनकर नमाज सुनकर गुरू ग्रन्थ का पाठ सुनकर किस प्रकार भक्त मुक्त हो जायेगें। यह अहंकार यह भी खोज नही करता कि कोई भक्त मुक्त हुआ है या नही ?

यह तो अपनी कृतियों से सन्तुष्ट तृत्प होता रहता है–

पड़ोस के लोग कभी कभी माइक से होने वाले अखण्ड पाठ से संकीर्तन से परेशान होते है परन्तु भय के कारण मना नही कर सकते इसलिए कि लोग अधार्मिक कहेंगे।

हमें यह भी समझाया गया है कि जिसे तुम कभी पकड़ नही सकते वही मिथ्या संसार है और जिसे छोड़ ही नही सकते खो नही सकते वही सत्य परमात्मा है।

तुम अपने ज्ञान में प्रेम में जो कुछ रख लिए हो उसकी स्मृति हटाकर अभी कुछ समय शानत निष्क्रिय होकर देखो वही निरन्तर शेष है जिसे तुम खो नही सकते वही आत्मा है वही विश्वमय परमात्मा है ंवही चेतन स्वरूप है अभी है यही है तुम्ही मय है।

तुम में जो प्रेम है वह तो अविनाशी है लेकिन प्रेम में जो भर गया है वह सदा रहने वाला नही है इसलिए सावधान रहकर देखते रहना कि जाने वाला छूटने वाला कब जाता है कब छूटना है या फिर तुम्ही उसे कब छोड़ते हो ? तभी समझ लेना कि यह तो छूटना ही था उसी समय उसे स्मरण कर लेना जो कभी छूटना ही नही है।

यह भी समझ लो कि चित्त अब तक कुछ चाहता है तब तक शान्ति मुक्ति नही मिलती । महत्वकांक्षी चित्त का शान्त होना असम्भव है।

जिस ज्ञान से मिथ्या पदार्थो को कुछ वस्तुओं तथा व्यक्तियों को अपना मान कर मोही लोभी अभिमानी बन रहे हो जिस ज्ञान में मन

के अनुकूल सुख सुविधा के लिए असार सम्पर्क बढ़ाते जाते हो और मिथ्याभिमान बढ़ाते जाते हो इसी ज्ञान से इन स्वीकृतियों के बन्धन को देो इसी ज्ञान से अहंकृतियों के मिथ्या सुखाभाग को पहिचानों और बौद्धिक भ्रम भ्रान्ति को देखो तभी तुम अपने ज्ञान स्वरूप में मुक्ति आनन्दानुभव कर सकते हो।

प्रत्येक जीवात्मा जो सत्य ज्ञान स्वरूप है वह अन्धी स्वीकृतियों से असार सम्पर्को से मिथ्याभिमान से अहंकृतियों की स्मृति से ढका हुआ है इस आवरण को जिसके द्वारा हटाया जाता है उसे ही गुप्त दक्षिणा कहते है।

सर्वोपरि पुण्यवान मानव वही है जो गुरु दीक्षा के सहारे ज्ञान को अनावृत करके नित्य प्राप्त परमात्मा की उपासना द्वारा वासना से मुक्त हो जाता है। परमात्मा की उपस्थिति को प्रति पल स्मरण रखना उपासना है।

जो मुक्त होना चाहता है उसे कोई बांध नही सकता और जो वासना के बन्धन में सुख मानता है उसे कोई मुक्त नही कर सकता। भगवान ने सावधान किया है कि तुम्हीं अपने शत्रु हो, तुम्ही अपने मित्र हो सकते हो।

जब तुम अपने ही मित्र नही होते तब दूसरा कोई मित्र तुम्हारा हित कैसे कर सकेगा ? जब तुम्हीं शत्रु हो तब तुमसे अधिक निकट होकर कौन शत्रु हानि पहुंचा सकेगा अर्थात तुमसे अधिक निकट दूसरा

कोई मित्र नही है और शत्रु भी नही है। अतः तुम अपने ज्ञान स्वरूप के मिथ्या स्वीकृतियों से मान्यताओं से तथा सम्बन्धों से मुक्त करों।

विकारों से बहुत सावधान रहो प्रायः शान्त मौन रहो, और जो कुछ हो उसे देखते रहो। अहं ज्ञान को आकारों से रहित कर लो ज्ञान से मुक्त होने पर ही आत्मा परमात्मा की अभिन्नता का बोध होता है। आत्मा बोध स्वरूप ही है।

तुम्हारे सामने अनुकूल प्रतिकूल जो कुछ स्वतः ही आ जाये तब स्मरण कर लो कि यह सब अपने ही कर्मो का फल है।

जितनी सरलता से तुम्हारी इच्छानुसार सामान या सुख मिल रहा है याद रखना तुम्हारे पुण्य घट रहे है और पुण्य घटते ही प्रतिकूलता आने लगेगी ।

तुम दूसरों द्वारा अनुकूलता का सुख भोगते हुए अपने द्वारा दूसरों को भी अनुकूलता का सुख देते रहो । परन्तु बहुत ही सावधान रहने पर प्रेम पूर्वक सुख देते रहना सरल होता है। अप्रेम में और असावधानी के कारण पाप बनते है । प्रायः प्रतिकूलता आने पर तन से वाणी से मन से किसी को कष्ट न हो दुख न हो यह ध्या नही रहता । अहंकार जितना अधिक कठोर होता है तथा भोगी होता है उतना ही असावधान रहता है।

कृतज्ञता तथा विनम्रता एवं प्रेम से भरपूर हृदय ही देते समय लेते समय सावधान रहता है।

सावधान साधक तो किसी के क्रोध के बदले में शान्त ही रहता है। प्रतिकूलताओं में शान्त रहने से पाप कटते है। एक सन्त कह रहे थे कि तुम जो कुछ हो सो तो हो ही रहोगे ही और यह जो कुछ है और होगा यह सब मिथ्या ही है इसलिए और कुछ होने की इच्छा न करों शान्त मौन होकर देखो बस जो शेष है वही वही है।

मन रूप रथ में सवार हुआ अहंकार सब ओर खोजता है संसार में सब कुछ पाना चाहता है अपने को नही देख पाता । अपने में जो है उसे नही खोजता तुम ज्ञान में इसकी मूढ़ता को पहिचान लो।

शरीर में देखना सुनना करना जिससे हो रहा है उसे जानना है वही सत्य है । समग्र जीवनव परमात्मा से भरा है इस सत्य को भूल कर सभी मनुष्य भटक रहे है विनाशी से अटक रहे । अब तुम इसे पढ़कर सुनकर यदि अटकते भटकते ही रहो तब तो दुख से मुथ्कत का और क्यो उपाय हो सकता है।

बार–बार दुहराने से झूठे भी सत्य सा लग रहा है। जो अपना नही है वह अपना प्रतीत हो रहा है, जो कठिन था वह अति सहज हो गया है।

स्वयं के बदलने पर ही स्वार्थ बदल सकता है। स्वार्थ न रहने पर परमार्थ सुलभ हो जाता है।

बुद्धि शुद्ध हाने दो तभी अज्ञान का पता लगेगा, तभी अहंकार का ज्ञान होगा। भजन की पूर्णता अथवा सिद्धि यही है कि बुद्धि शुद्ध हो जाये और प्रीति प्रभुमय हो जाये।

अज्ञान से अन्धे अहंकार को कामातुर के धनार्थी को किसी प्रकार के मद से उन्मत को क्रोधी को परिणाम नही दीखता क्योकि इनकी बुद्धि शुद्ध नही होती।

अन्तः करण में प्रतिबिम्बित चैतन्य ही उपाधि भेद से अनेक जीव बन रहा है। अविद्योपधि चैतन्य को ही जीव कहते है मायोपाधि चैतन्य को ईश्वर कहते है। ईश्वर जगत में कर्ता बन रहा है। जीव ही शरीर में अहंकर बन कर कर्ता भोक्ता हो रहा है।

निरुपाधि चैतन्य को ब्रम्ह कहते है।

सावधान पुरुष ही समझ सकेगे कि अपने को सत्य परमात्मा आनन्द चाहिए, वह अपने में ही इसकी अनुभूति के लिए शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है।

भगवान ने कहा है कि जो निष्काम होकर प्रीतिपूर्वक मेरा भजन करता है उसे मैं बुद्धि योग सुलभ कर देता हूं। अहंकार बुद्धि के साथ भोगी बना रहता है। भजन करने वाला साधक बुद्धि योगी होकर अहंकार से मुक्त होता है अहंकार से मुक्त होने पर साधक स्वस्थ होता है स्वस्थ ही आत्मस्थ होता है आत्मस्थ होता है, आत्मस्थ पर साधक

स्वस्थ होता है स्वस्थ ही आत्मस्थ होता है, आत्मस्थ ही नित्य मुक्त होता है। जो नित्य मुक्त है वही साक्षी होता है।

चेतना जब अहंकार से ढक जाती है तब आत्मबोध नही रहता है।

सावधान रहकर तुम निरंतर साकार को माया मय जानो आकारों को मिथ्या जानो और निराकार को निश्चल अनुभव करते रहो।

देहमय होकर तुम्हीं साकार हो और देह के दृष्टा तुम्हीं निराकार हो।

संकल्पों से मुक्त मनोमय अहंकार मय रहने तक भय से मुक्त न हो सकोगे। निराकार चेतना आत्मा होकर तुम भय से मुक्त हो।

अचाह होकर, शून्य होकर, शान्त होकर ध्यान से जो है उसे देख सकते हो । ध्यान करो नही बल्कि ध्यान से देखो, ध्यान में कुछ करना नही होता केवल देखना होता है । बुद्धि युक्त होकर ध्यान से तुम जानोगे कि इस देह के भीतर अस्थि मांस पिंज्जर मल मूत्रादि अपवित्र ही भरा है और ऊपर खाल लिपटी है। ध्यान से देखने पर जब विचार शान्त हो जाते है तब साधक मनोमय कोष में अदभुत महान शक्ति के चमत्कारों को देखते हुए सिद्धियों द्वारा परिचय देते है।

हमें समझाया गया है कि आत्मा स्मरण रहना ही वास्तविक ध्यान है और अहंकार के विस्मरण मेंही वास्तविक भक्ति है अपने में तल्लीन होना ध्यान है। परमात्मा में तन्मय होना प्रेम भक्ति है।

ध्यान से देखते हुए अन्त में बोध होता है कि मैं यह शरीर नही हूं जड़ नही हूं, विनाशी हूं मैं नित्य निरन्तर केवल चिदाकाश हूं। देह में ही भूताकाश है देह में ही चित्तकाश है इनका दृष्टा चिदाकाश है।

यह गुरू सम्मति है कि तुम पर में अनित्य पदार्थो में देहो में मन में रमण न करके नित्य चेतन में ही रमण करो इसी को भगवान ने आत्माराम कहा है। पर रमण में भोग है रोग है । आत्म रमण योग है नित्यानन्द है। पर रमण में अनित्य देह का संयोग है वियोग है दोनो में भोग है यही भवरोग है । स्वयं से जो कुछ भी भिन्न वस्तु या व्यक्ति है यह सब पर पदार्थ है। पर रमण में ही पतन होता है। पर में रमण करते रहने तक पराधीनता है सत्य से विमुखता है।

हमें समझाया गया है कि यदि बुद्धि मोह से अज्ञान से कुछ समय के लिए भी अलग हो रही है तो उतने समय से ही शुद्ध बुद्धि से देख लो कि जगत में किसी वस्तु व्यक्ति पर स्वतंत्र अधिकार नही है। जिसका यह जगत है उसी का अधिकार है।

उसी के हम है उसी के सब है। अनन्त प्रतिमायें परमात्मा की ही है फिर भी मोही अहंकार भगवान की भी प्रतिमा बनाता है और अपने भगवान मन्दिर का तथा मूर्ति का मोही बनता है।

अहंकार अपने द्वारा बनवाई गयी प्रतिमा में यदि भगवान को मानता है मस्तक, झुकाता है तो शुभ है । कभी न कभी परमात्मा को पहिचानेगा तभी स्वाधीनता को प्राप्त करेगा।

प्रतिमा की कोई विशेषता नही महत्व तो प्रेम का है। प्रेम के कारण ही प्रतिमा सुन्दर वरदाता तथा रोग शोक हर्ता प्रतीत होता है। भगवान भी मिल जाये परन्तु प्रेम भगवान मय न हो तो भगवान को कोई महत्व नही देगा।

मनुष्य मन माने भगवान की प्रतिमा बना सकता है। लेकिन प्रेम नही बना सकता । मनुष्य मन माने भगवन की प्रतिमा बना सकता है लेकिन प्रेम नही बना सकता । मनुष्य का अहंकार इतना अन्धा है कि प्रेम का भोगी बना रहता है परन्तु प्रेम स्वरूप प्रभु को गुरू ज्ञान बिना नही पहिचाान पाता ।

जीवन में सत्य को, परमात्मा को प्रेम को कोई भी नही दे सकता, समझा भी नही जा सकता । यह तो सावधान होकर शुद्ध प्रज्ञा द्वारा स्वतंत्रता पूर्वक जाना जाता है।

शुद्ध प्रज्ञा जाग्रत होने पर श्रवण मात्र से ही बोध हो जाता है। प्रज्ञा जाग्रत नही हैं तब समझ में आना बहुत कठिन है।

सत्य आत्मा की अनुभूति पढ़ने सुनने से ही नही होती अनुभूति के लिए प्रज्ञा की जाग्रति आवश्यक है और प्रज्ञा जाग्रति के लिए अपनी ओर से अन्दर यात्रा की सफलता के लिए ध्यान में तत्पर रहना है, कुछ करना नही है। यदि ध्यान योग में मन की चच्वलता बाधक हो तब प्रभु की कृपा पर ही सब छोड़ देना है और प्रतीक्षा करते रहना है कि कब होता है।

अज्ञान में यह अहंकार हिन्दू मुसलमान जैन बौद्ध अथवा उच्च कुलीन या नीच ब्राहम्ण वैश्य शूद्र आदि अनेक नामों रूपों का अभिमानी बना हुआ है।

ज्ञान में देखने पर कोई विद्वान अपने को एक मनुष्य समझता है और मानव धर्म का पक्षपाती होता है।

विशेष निष्पक्ष बुद्धि द्वारा चेतना जाग्रति में अपने को एक प्राणी समझता है और अधिक सूक्ष्म बुद्धि द्वारा अपने आप को परमात्मा से अभिन्न अस्तित्व अनुभव करता है। अस्तित्व में ही परमात्मा की अनुभूति होती है। हम इनेके साधक करोड़ों जनसंख्या की भीड़ में इतने होश में आ गये है कि अपने अहंकार से बढ़कर भगवान की भगवती की शक्ति को मानने लगे है परन्तु अपनी बुद्धि की जड़ता को नही समझ पाते जिसके कारण अपनी मान्यताओं में स्वीकृतियों में तथा अहंकृतियों में अटके हुए अहंकार को सन्तुष्ट करने में व्यस्त है।

गुरू वाक्यों से सावधान होकर प्रभु के कहे हुए वचनो पर ध्यान देते है तब अपनी भूल का, भ्रान्ति का तथा अपने आगे अज्ञान की परिधि का ज्ञान होता है फिर भी इस ज्ञान से हृदय दुखी नही होता इसीलिए साधना में सदगति नही हो पाती ।

हमें सन्त सदगुरू समझाते है दिखाते है अभी सावधान होकर देखो बाहर प्रकृति में सब चच्चल है भीतर चेतन आत्मा अचल है, वही

तुम हो। तुम झूठ के साथ असत के साथ मिल कर असत क्यो बन रहे हो ?

मुक्त के संग से तुम अपने को मुक्त पाओगे जबकि जड़ के साथ बद्ध के साथ मिलकर तुम जड़वत बन रहे हो।

शास्त्र में कहा है कि आत्मा चेतन साक्षी है, व्यापक है पूर्ण है एक है, मुक्त है, चेतन है, निष्क्रिय है असंग है निष्पृह है शान्त है परन्तु भ्रम के कारण संसारी लग रहा है।

आत्मबोध की अवस्था में जनक जी के उदगार है मैं आश्चर्य मैं हूं मुझको नमस्कार है क्योकि जब सभी कुछ नष्ट हो जायेगा तब भी मैं रहूगा।

मेरा मुझको नमस्कार है मै देहधारी होता हुआ भी देह न रहने पर मैं रहूंगा। मैं न ही कहीं जाता हूं न आता हूं मैं ही संसार को घेरकर स्थित हूं । मैं चेतन स्वरूप असीम हूं । संसार मेरे भीतर है।

ज्ञान तो अपना स्वभाव है मैं देहधारी होता हुआ भी देह न रहने पर मैं रहूंगा। मैं न ही कही जाता हूं न आता हूं मैं न ही संसार को घेरकर स्थित हूं। मैं तेचन स्वरूप असीम हूं संसार मेरे भीतर है।

ज्ञान तो अपना स्वभाव है मान्यताओं से ढग गया है मैं शुद्ध चैतन्य हूं यही आत्म भाव स्मरण रखना है। आत्म रमण से चित्त शान्त होता है।

सन्त के बचन से यह बहुत अच्छी बात समझ में आई कि जो असत्य शथ्द सुन सुन कर भर गया है वह शब्दों के द्वारा तो निकल सकता है।

मोही लोभी अभिमानी अज्ञानी के शब्द सुन सुनकर हम स्वीकार करते गए इसीलिए अहंकार मोही लोभी अभिमानी बन गया। आरम्भ से अज्ञानी को ही सुनने का अवसर मिला था । जब से ज्ञानी के द्वारा वचन सुनने को मिले तब से उस सुनने के विपरीत ही निर्णय मिल रहे है अज्ञानी ने कहा कि यह तुम्हारे हाथ पैर आंख कान सुन्दर है या असुन्दर है यह तुम्हारने माता पिता भाई बहन आदि सगे सम्बन्धी है यह भूमि भवन धन आदि तुम्हारे है अब ज्ञानी कहते है कि यह कुछ भी तुम्हारा नही है यह सब मिला है जिसने दिया है उसी का है और इसलिए तुम्हें दिया है क्योकि तुम उसी के हो । भले तुम उसे आंखो से नही देखते परनतु वह तुम्हें निरन्तर देखता है बल्कि तुम्हारी आंखे उसी के द्वारा देखती है तुम्हें उसी के द्वारा सुनवाई देता हैं वही निरन्तर है। अभी है यही है वह है इसीलिए तुम हो लेकिन उस पर परम सत्य, परम आत्मा प्रेम स्वरूप अखण्ड ज्ञान स्वरूप अनन्त शक्ति स्वरूप को सुना ही न थाअब सुन रहे हो।

जब मन देखे जगत को जगत रूप हो जाय।

सुन्दर जाने ब्रम्हा को तब मन ब्रम्हा समाय।

जिस प्रकार सुनते सुनते असत्य अनित्य विनाशी भर गया है उसी प्रकार ज्ञानी के वचन सुनते सुनते यह सत्य सन्देश उपदेश भी भर जायेगा।

शब्दों के द्वारा असत्य स्वीकार कर लिया है वह शब्दों द्वारा निकलेगा और नित्य प्राप्त सत्य स्वीकृत होगा इसीलिए सत् चर्चा करना सतचर्चा सुनना और सुने हुए सत्य का मनन करना आवश्यक है।

हमें यह भी समझाया गया है कि जब तुम किसी को निकाल कर किसी अन्य को पकड़ लोगे तब तुम उसे नही देख सकोगे जो पहले से ही तुम्हारे भीतर विद्यमान है।

सन्त सदगुरू सावधान करते है कि मेरे द्वारा सत्य सुनो समझों और अनुभव करो लेकिन इस नाम रूप को पकड़ कर अटक न जाना क्यों ऐसा करने से तुम उस नित्य ज्ञान स्वरूप आत्मा की अनुभूति से वंचित रहोगे जो परमानन्द है केवल है जो ज्ञान बाहर से बुद्धि में आता है उससे बन्धन बढ़ते है । जो ज्ञान आता नही, है ही उसी ज्ञान से मुक्ति सुलभ होती है भगवान ने गीता में कहा है कि जो अनेक ज्ञानों से विमूढ़ है उसे नष्ट ही समझो।

याज्ञवल्क्य ऋषि ब्रम्हा विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षर्मयः श्रोतमयः क्रोधमयोक्रोधमयों धर्ममयोधर्ममयः इत्यादि ।

यह ब्रम्हा आत्मा है। यह विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय, चक्षुमय, श्रोतमय, पृथ्वीमय, जलमय, वायुमयआकशमय, तेजोमय, अतेजोमय,

काममय, अकाममय, क्रोतधमय, अक्रोधम धर्ममय, अधर्ममय, और सर्वमय है। जो कुछ प्रत्यक्ष और परोक्ष है, वह यही है। यह जैसा करने वाला और जैसे आचारण वाला है वैसा ही हो जाता है। पुण्य कर्मो से शुभ होता है और पाप कर्मो से पापी होता है। पुण्य कर्मो से पुण्यात्मा होता है। यह पुरूष काममय ही हैं यह जैसे कामना वाला होता है वैसा ही संकल्प करता है। जैसा संकल्प करता है वैसा ही कर्म करता है। जैसा कर्म करता है वैसा ही फल प्राप्त करता है।(याज्ञवल्क्य)

जो सुख को पकड़ता है वह भोगी है, जो दुख को पकड़ता है वह त्यागी है जो न पकड़े न छोड़े बल्कि सुख दुख का साक्षी रहे वही ज्ञान है। वही असत से मुक्त है।

ज्ञानवान मुक्त बचता है अंहकार नही बचता । अस्तित्व बच रहता है, अस्मिता नही बचती है।

देहभाव त्यागो आत्मभवा से रहो

नाना प्रकार के संकल्प ही बन्धन का कारण है। उन संकल्पों का त्याग कर सर्व संकल्पों को साक्षी हर कर देखने का जब अभ्यास होगा तब मुक्ति प्राप्त हागी। (अन्न पूणो)

बुद्धिमान साधक देह भाव से मुक्त होने के लिए साक्षी का स्मरण रखता है। साक्षी तो है ही । अभ्यास से साक्षी चेतन आत्मा को पाना नही बल्कि देहाभ्यास को ज्ञान से हटाना है।

जितनी सजगता होगी उतना ही चित शान्त होगा । ध्यान का अर्थ एकाग्रता नही है सजगता है। कुछ स्मरण ने करो, कुछ भुलाने की कोशिश न करो सजग रह कर देखा यह गुरू सम्मति है।

बोध को बही केन्द्रित करना है जहां केवल ज्ञान मात्र शेष रहता है जहां दृश्य से सम्बन्ध नही रहता ।

ज्ञानवान कहता है कि मैं केवल हूं जो होता है वह देखता रहता हूं। हमसे अधिक हमारे पास और कुछ भी नही है। हम सदा से ही अपने पास है। एक क्षण भी कभी अपने से दूर हुए ही नही इस प्रकार आत्म बोध से ही दुख मिट जाते है।

जब कभी प्रश्न उठता है कि आत्मा को किस प्रकार जाने तभी शान्त होकर देखो कि यह जो अहं चेतन का बोध हो रहा है यह जो हूं का अर्थात स्वयं होने का ज्ञान है यही तो अहं से उपलक्षित आत्मा है। आत्मा कोई दृश्य पदार्थ नही है जिसे आंखो से देखा जा सके, इन्द्रिय से ग्रहण किया जा सके।

आत्मा द्वारा भूतकाल को वर्तमान काल को और भविष्य को जाना जाता है। आत्मा ही तीनो कालमय है और उससे अतीत भी है।

भूत भविष्य वर्तमान में ही हूं यही आत्मभ्यास है । यही की प्रतीति अहं में ही है।

कुछ होने का संकल्प, कुछ पाने का, या कुछ छोड़ने का संकल्प, त्याग का संकल्प असत् से सम्बन्धित होता है। सभी संकल्प अहंकार में ही उत्पन्न होते है।

संकल्प त्याग से अहं की महिमा का बोध होता है। संकल्प आकारों से बांधता है।

संकल्प छोड़ते ही शान्ति उपलब्ध होती है। उस शान्ति में स्थिर होने पर प्राप्त वस्तुओं की ममता तथा अप्राप्त का चिन्तन स्वतः मिट जाता है।

सभी सन्त महात्मा तथा रामायण गीता भागवत आदि सभी सद शास्त्र दूसरे की निन्दा को परचर्चा को पाप बताते है। किसी के गुणों तथा दोषो की चर्चा न करके प्रभू के दिव्य गुणों की एवं सुन्दर चरित्रों की चर्चा करने की सम्मति देते है, परन्तु अनके बार परनिन्दा परचर्चा होने लगती है इसीलिए गुरूजन परमात्मा के नाम स्मरण में मन लगाये रहने के लिए विशेष आग्रह करते है।

निर्विकार होना, निर्विचार होना संकल्प रहि होना तो सिद्ध पुरूषो के लिए ही सम्भव है, आरम्भ से रजोगुणी साधक को व्यर्थ और अनर्थ से अपनी शक्ति को बचाने के लिए सार्थक शुभ सुन्दर कार्यो में मन को लगाना अभ्यास योग में सहायक होता है।

नित्य निरंतर रहने वाले परमात्मा और आत्मा के सहज योग की अनुभूति अपने से भिन्न संयोग की स्मृति नही होने देती । यह सदगुरूदेव की सम्मति है कि तुम निरन्तर वर्तमान में ही रहो कुछ भी स्मरण न करो, जितने समय तक तुम विचार शून्य रहो उतने समय तक चित्त में कामना वासना लुप्त ही रहेगी। स्मरण आते ही चेतना आत्मा का चिन्तन करो।

श्रद्धालु साधको के लिए यह सदगुरू का उपदेश है कि –

यदि तुम्हें निश्चित होना है तो तन, मन, धन भूमि, भवन परिवार के प्रियजनों को परमात्मा से मिली हुई वस्तु और परमात्मा की आत्मा को प्रत्येक व्यक्ति में जानकर चेतन स्वरूप से ही प्रीति दृढ़ करो सभी के प्रति सदभाव रखना न भूलो। अपने को अकिच्चन जानों, चाह रहित होकर परमात्मा का निरन्तर स्मरण चिन्तन करते रहो। परमात्मा को पाने का प्रयन्त छोड़कर अपने मेंही परम प्रभु को शक्ति के रूप में ज्ञान के रूप में और प्रेम के रूप में स्वीकार करके निभर्य निश्चिन्त निर्भर रहो।

मनन करते रहो प्रभु का ही सब है, परमात्मा प्रभु ही सर्वमय है ऐसा जानकर किसी की निन्दा न करो किसी को बुरा न समझो परमात्मा सर्वज्ञ है सब कुछ जानता है सभी प्राणी अपनी प्रकृति से विवश होकर कर्म कर रहे है, किसी से घृणा न करो।

किसी गायक संगीतज्ञ की प्रशंसा की जाये और उसके संगीत की निन्दा की जाये तो क्या परिणाम होगे ? इसी प्रकार परमात्मा की स्तुति की जाये और परमात्मा की प्रकृति का विरोध किया जाये तो यह अविवेक ही होगा। क्योकि संसार में जो कुछ है सब चिदविलास है अस्तित्व का नृत्य है।

योग वाशिष्ठ का वचन है :-

जैसे पुष्पों में सुगन्ध तथा तिल में तेल अथवा रसयुक्त पदार्थो में स्वाद रहता है वैसे ही यह आत्मा देव सम्पूर्ण देहों में रहता है।

हृदय में स्थित यह चेतना आत्मा अविचार के कारण ही ज्ञान नही होता । विचार से इस परमेश्वर को जान लेने पर परमानन्द उदय होता है तभी काम क्रोधादि विकार नष्ट हो जाते है । तृष्णा समाप्त हो जाती है।

इन्द्रिय आदिको के सुसुप्त होने पर यह आत्मा जागता है।

अविवेकियों पर यही आत्मा प्रहार करता है और परिछित्र आत्मा रूप ईश्वर के उपासकों को यही आत्मा वांछित फल देता है।

गीता में भी कहा है कि कोई किसी देवता की उपासना करे उस देवता की ओर से मैं परमात्मा ही सबकी पूर्ति करता हूं। भगवान कहते है - कि परब्रम्हा परमात्मा सभी प्राणियों में एक ही है। वह सभी भूतों को धारण करने हारा तथा संसार करने हारा और उत्पन्न करने हारा है।

यह श्रुति का निर्णय है –

देखने वाला दृष्ट ही सत्य है वही तुम हो और जो कुछ भी दृश्य दीखता है वह सब झूठ है।

गुरूजन सावधान करते है कि जगत में पाने योग्य कुछ भी नहीं है और छोड़ने को भी कुछ नही है जबकि सब मिथ्या है, प्रतीती मात्र है।

तुम्हारे कुछ करने से वही मिलता है जो बाहर है और अकर्म से बिना किये ही वह दीखता है जो भीतर है। जो सदा एक रस निरन्तर विद्यमानसत्य परमात्मा है वह न बाहर है न भीतर है वह तो बस केवल है। वही सबकों घेरे हुए है पूर्ण है।

जिस प्रकार के रहने प्लेट में चित्र नही आते उसी प्रकार ज्ञान में देखने से मन में कोई चित्र नही भरते क्योंकि ज्ञान में मिथ्या का प्रवेश नही होता ।

मन में संकल्प उठना ही चित्र का भर जाना है। संकल्पों से मुक्त मन आत्मामय रहता है और संकल्पों के संग से आत्मा मनोमय बन जाता है।

सब बलों का तथा विचारों का संकल्पों का श्रोत आत्मा है। तुम आत्मा होकर रहो तभी भय चिन्ता अशान्ति दुख का अन्त हो जायेगा।

जो विद्वान अपने को जड़ देहमय न मान कर नित्य चेतन स्वरूप जानता है वही तत्वज्ञानी है।

जो विद्वान अपने ज्ञन को माता पितामय तथा बन्धुमय पत्नीमय मित्र शत्रुमय न मानकर ब्रम्हामय अनुभव करता है बड़ी तत्वज्ञानी है।

जो विद्वान किसी कल्पना से तथा मान्यताओं से एवं स्वीकृतियों से और अहकृतियों से नही बंधा है जो भय से , चिन्ता से, अशन्ति से मुक्त रहकर दुखद–दुखद बेदनाओ का दृष्ट है वही तत्ववेता कहा जाता है।

जो विद्वान विनाशी देह रूपी क्षेत्र में अपने को क्षेत्रज्ञ अथार्त क्षेत्र का स्वामी जानता है वही तत्ववित आत्मावित है।

जो अनुकूल प्रतिकूल परिस्थिति में रागी द्वेषी न होकर हर्षित शोकित न होकर शान्त रहता है वही तत्वनिष्ठ है।

भगवान का निर्णय है कि तत्वज्ञज्ञानी ब्रहा को प्राप्त होकर कही मोहित नही होता और अन्तकाल में ब्रम्हा निर्वाण ब्रम्हानन्द को प्रापत होता है।

सचिदानन्दमात्रो स्वप्रकाशो स्मिचिदघनः

सत्व स्वरूप सन्मात्र सिद्ध सर्वात्मकोस्म्यहम।

मैं सचिदान्नद मात्र हूं स्वप्रकाश, मैं चिदघन रूप हूं सत्य स्वरूप सत् मात्र हूं।

मैं प्रसिद्धि सर्व का आत्मा हूं (ब्रम्हा वि0पनि0) साधना में तत्पर मुमुक्षार्थी ही आत्मबोध का अधिकारी होता है। साधनाहीन व्यक्ति नही होता।

योगाभिलाषी साधक को धैर्य के साथ युक्तिपूर्वक धीरे–धीरे मन को आत्मा में स्थिर करना चाहिए । (गी06/25) ध्यान में विन्दूपनिषत में ही यही श्लोक है और इस आत्मा के ध्यान का फल बताया है कि पर्वत के समान पापराशि आत्मा के ध्यान योग से नष्ट हो जाती है अन्य किसी साधन से नही होती ।

योगशिखोपनिषद में बताया है कि व्यापक परमात्मा में जीवन का भास वैसे ही होता है जैसे रस्सी में सर्प का भास होता है रस्सी का ज्ञान होते ही सर्पाभास भिट जाता है। उसी प्रकार चेतन्य आत्मा के ज्ञान से ही मिथ्याभास मिट जाता है। इसी को असत से मुक्त कहते है।

अहं के आकारों को अर्थात मेरा के विस्तार को बढ़ाते जाना पतन है। अहं को आकारों से तोड़ते जाना उत्थान है।

प्रकृति की जड़ता, चेतना को जकड़े हुए है। प्रकृति का कण कण चेतना से लिपटा हुआ है और जड़त्व के भीतर से जड़त्व को तोड़ती हुई चेतना पूर्ण होने के लिए गतिमान है।

जहां तक अतृप्ति की वेदना है वहां तक असत संगी जीवात्मा है और जो परम तृत्प है वही परमात्मा है। जीवात्मा जहां कहीं भी जब

कभी भी परमात्मा का होना स्वीकार करता है वही परमात्मा विद्यमान है।

परमात्मा समस्त विश्व में चिदाकाश है और तुम जीवात्मा देह में चिदाकाश हो।

एक सन्त ने साधना बताई कि चौबीस घन्टे में एक घन्टा शान्त रहो मौन रहो, कुछ भी न चाहो, केवल परमात्मा के होने का ही स्मरण करो कि चारो और सचिदानन्द परमात्मा ही है।

अपने बाहर भीतर परमात्मा ही परमात्मा है अन्य कुछ भी नही है।

हम सभी साधकों के लिए यह गुरू उपदेश है सर्वत्र परमात्मा तो है ही उसके निरन्तर होने का स्मरण रहे यही ध्यान योग है।

अहं के साथ लगे हुए आकारों के गलते ही जो शेष रहता है वही आत्मा है।

जो देह वापी आत्मा है वही विश्वव्यापी परमात्मा हैं वही ब्रम्हा है सत्य है सनातन है।

सन्त कहते है कि तुम अपने नित्य रहने वाले चेतन स्वरूप आत्मा में बुद्धि को स्थिर करो।

तुम देह में न अटके रहो। यह देह तो अस्थि पन्जर मात्र है खाल से लिपटी है। जो ज्ञान जड़ देहमय बन जाता है वही ज्ञान देह से

असंक होकर चेतन आत्मा है। तुम केवल आत्मा होकर परमात्मा से अभिन्नता का स्मरण करों ।

तुम शान्त मौन होकर ध्यान में केवल चेतन स्वरूप को ही रहने दो अन्य का स्मरण करते रहो और देखो कि यह स्मरण कितनी देर तक रहा है। अपने को शानत बैठने का नियम दृढ़ करो और निरीक्षण करो कि कितनी बार नियम टूटता है।

यह भी सन्त सम्मति है कि बाहर जो कुछ भी दिखाई देता है और जहां भी आकर्षण है वही परमात्मा का माधुर्य है सौंदर्य है।

जिससे तुम भयातुर होते हो वही परमात्मा की शक्ति को मन ही मन नमस्कार करो यह स्मरण रहना कठिन है फिर भी अभ्यास बढ़ा लो।

परमात्मा ही सर्वमय ह।

जिस प्रकार पृथ्वीतत्व ही सर्व आकार मय है। आकार बदलते रहते है तत्व ज्यों का त्यों आकारों के प्रथम आकारों के मध्य में और आकारों के टूटने पर बना ही रहता है उसी प्रकार परमात्मा संसार के प्रथम संसार के साथ और सांर के न रहने पर नित्य विद्यमान रहता है।

परमात्मा ही नित्य सत्य है उसी में तुम देह व्यापी वेतन आत्मा हो। तुम जिससे मिलोगे उसी में व्याप्त होकर उसीमय बन जाओगे

इसीलिए तुम जड़मय देहमय, होकर भी देह नही हो जड़ नही हो तुम ज्ञान स्वरूप चेतन हो।

जब तुम महते हो या मानते हो कि मेरा अपमान हो रहा है यह मेरी हानि है यह मेरा सम्मान है यह मेरा लाभ है तब तुम भोक्ता बन रहे हो।

जब तुम देखते हो कि देह को मान मिल रहा है। देह का अपमान हो रहा है। नाम की बड़ाई की जा रही है और नाम की निन्दा की जा रही है, जब तुम ज्ञान में दृष्ट हो।

जब तुम मानते हो मेरे दर्द हो रहा है, मुझे सुख मिल रहा है मुझ सर्दी या गर्मी लग रही है या मुझे अच्छे सुन्दर वस्त्राभूषण मिल है अथवा मेरे वस्त्र आभूषण छिन गये है । मुझे भूमि, भवन सम्पत्ति प्राप्त हुई है या मेरी भूमि भवन सम्पत्ति छिन गई है तब तुम अहंकार रूप में भोक्ता बन रहे है।

जब तुम देखते हो कि देह में दर्द हो रहा है देह का मन द्वार सुख मिल रहा है। देह को सर्दी गर्मी प्रतीत हो रही है देह को वस्त्राभूषण मिले है या देह से छिन गई है, अहंकार को भूमि भवन सम्पदा मिली है या अहंकार से छिन गई है ऐसा देखते हुए तुम ज्ञान में दृष्ट हो। अज्ञान में तुम भोक्ता हो और ज्ञान में ही तुम मुक्त दृष्टा हो सकते हो।

सदगुरू ने बताया है कि –

जब तुम ज्ञान स्वरूप साक्षी चेतना रहकर काम क्रोधादि वेगो को देखने में तत्पर रहोगे तब यह बेग शिथिल होते जायेगे क्योकि चेतना साक्षी होने पर काम क्रोध, लोभ, मोह नही करती है।

शक्ति को समेटने के लिए और सुरक्षित रखने के लिए पद्यामन, सिद्धासन के साथ साम्भवी मुद्रा और मूलबन्ध का अभ्यास बढ़ा लो।

अध खुले नेत्रों से दोनो भौ के मध्य में मन को लगाये रहता साम्भवी मुद्रा है जो शिव जी ने साधी है।

गुदा द्वार को ऊपर की और संकुचित करना सिकोड़ो रहना, जिस तरह घोड़ा लीद निकलने के बाद सिकोड़ता है यही मूल बन्ध है।

मन के चच्चल हाते ही मूलबन्ध छूट जायेगा । जितने समय तक मन स्थिर रहेगा उतनी देर मूलबन्ध लगा रहेगा। आरम्भ में एक मिनट रोकना कठिन है। योगी का मन सहस्त्रार में स्थिर होता है।

भक्त का मन हृदय केन्द्र में लगा रहता है।

ज्ञानी का मन आज्ञा चक्र में शानत होता है।

कामी का मन जननेन्द्रिय में केन्द्रित होता है।

सदगुरू ने हमे समझाया कि बाहर की ओर इन्द्रिय द्वारों से जाने वाले मन को भीतर की ओर मोड़ने के लिए बहुत सजह साधना है यह है कि तुम अहं में मन को स्थिर, करो सीधा अहं के भीतर प्रवेश करो।

मन अपने आकारों समेत अहं के भीतर जाते ही जड़मय न रहकर चिन्मय हो जायेगा।

जिस प्रकार जल से ही बरफ जमती है और जल में घुल जाती है इसी प्रकार अंह से ही मन, आकारमय बनता है और अहं ज्ञान में लीन हो जाता है।

आकारों का स्मरण या विस्मरण अहं ज्ञान में ही होता है। ज्ञान ही चिदाकाश है। चिदाकाश में ही छित्ताकाश मनाकाश है इसी में अगणित आकार भरे है जैसे भूताकाश में आंखों से दीखने वाले आकार है उसी प्रकार मन में चित्त में मानसिक आकार है।

आंख बन्द करते ही इन्ही आकारों का मनन चिन्तन चलता रहता है इसी को मन की चच्चलता कहते है।

शुद्ध ज्ञान ही अनेक नाम रूपमय जगदाकार बन रहा है ज्ञान से ही मन की उत्पत्ति है ज्ञान में ही मन का लय होता है।

मन को ही मनुष्य के बन्धन का और मोक्ष का कारण बताया है। मन दो प्रकार काहोता है एक अशुद्ध मन जो विषयासक्त है, दूसरा शुद्ध मन होता है, जो विषय कामना से रहित है।

तत्ववेता ऋषि कहते है कि शुद्धि के लिए अनेक कर्म करते हुए तथा अनेक यक्ष एवं जप अथवा तीर्थ सेवन करते हुए भी तब तक मोक्ष नही होता जब तक सत तत्व का ज्ञान नही होता।

इसीलिए चिन्मात्र तत्व आत्मा परमात्मा जो नित्य विद्यमान है उसी की उपासना करो।

बिहाय शास्त्र जालानि यत्सत्य तदूपास्यताम।

शास्त्र जाल को छोड़कर परमार्थ में ठहर जाओं

लोभ काम क्रोधादि दोषों से मुक्त न होने तक शास्त्र जाल में ही बुद्धि मोहित रहती है।

जब तक लोक वासना है तथा शास्त्र वासना है एवं देह वासना है तब तक संसार से मुक्ति नही मिलती ।

अहं आत्मा ही सर्वरूपमय है सर्व नाममय है अहं आत्मा ही पापमय पुण्यमय संसारमय दृश्यमय है।

शक्ति ही नीचे उतरते हुए कामोपभोगमय हो जाती है और वही शक्ति ऊपर उठते उठते हृदय केन्द्र में भावमय, भक्तिमय, कण्ठचक्र में नादमय, वही आज्ञाचक्र में स्मृति ज्ञानमय और वही शक्ति सहस्त्रार में पहंच कर शिवमय होकर नित्य योगानन्दमय होती है।

साधना का निर्णय तत्वदर्शी गुरू द्वारा ही होता है। मनमुखी वृत्ति वाले साधक की साधना, योग में न पहुंचाकर भोग में ही अटका देती है।

अनुभवी गुरू किसी को आरम्भ में तीर्थयात्रा तथा यज्ञदान करने को कहते हैं किसी को मूर्ति की उपासना में बैठने को कहते है। किसी को भगवत नाम संकीर्तन पुनः एकाकी कीर्तन की सम्मति देते है।

तमोगुण तो साधना के द्वारा राजोगुण में बदलता है। राजोगुण शानत होते होते सतोगुण की प्रधानता में ध्यानयोग की साधना सहज हो जाती है।

सतोगुण की प्रधानता में पूजा पाठ जप कीर्तन से शक्ति सभय बचाकर प्राणोपासना में लगाना होता है।

प्राणोपासना में क्रिया कर्म की अपेक्षा नही रहती अपितु ध्यान से देखना ही अक्रिया में दृढ़कर करता है।

सूक्ष्म एवं तीव्र बुद्धि से ही यह समझ में आ सकता है कि संसार में जितने भी परम पूज्य आचार्य हो चुके है जितने भी तीर्थ अथवा बौद्ध हो चुके है जितने भी पैगम्बर, मुहम्मद ईसा आदि सत्य सन्देश देने वाले प्रगट हुए है, यह सब आत्मा के ही अनेक नाम रूप है।

लाखो करोड़ो मंदिरों में जो प्रार्थनाएं की जाती है, लाखो मसजिदों में जो नामज पढ़ी जाती है तथा अनेग गिरिजाघरों में अथवा पूजागृहों में जो नियम पूरे किये जाते है सभी का उत्तर एक आत्मा परमात्मा द्वारा ही मिलता है। सभी की पूर्ति एक अनन्त आखण्ड शक्ति कहो या आत्मा कहो या ज्ञान कहो इसी के द्वारा सब सुना जाता है सबको देखा

जाता है सबकी पूर्ति की जाती है। सभी को अपनी मान्यतानुसार सन्तोष होता है।

हिन्दू मुसलमान ईसाई जैन बौद्ध आर्य सनातनी आदि सभी का आश्रय एक ज्ञान स्वरूप आत्मा परमात्मा ही है। परन्तु सबकी बुद्धि इस आखण परम सत्याश्रय को समझ नही पाती है।

एवं सर्वमिद विश्व परमात्मैव केवल।

ब्रहौव परमाकाश मेष देवः परः स्मृतः ।।

हे मुने इस प्रकार यह सम्पूर्ण विश्व केवल परमात्मा का रूप ही है। यह ब्रम्हा परमाकाश और सबसे परे देव कहा गया है।

इसलिए इसी देव का पूजन कल्याण कारक है इसी से सब कुछ प्राप्त होता है। यह देव सर्व जगत का अधिष्ठान है। यही देव रूप है और इसी देव में सर्व स्थित है।

भगवान कहते है जो चराचर सब भूतों के बाहर भीतर परिपूर्ण है और चर अचर रूप भी वही है और वह सूक्ष्म होने से सबके जानने में नही आता तथा अति समीप मे और दूर में भी स्थित है।

वह परमात्मा सब ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अति परे कहा जाता है वह परमात्मा ज्ञान स्वरूप और जानने के योग्य एवं तत्व ज्ञान से प्राप्त होने वाला सबके हृदय में स्थित है।

जो शरीर इन्द्रियों से रहित है सर्व का साक्षी है परमार्थ से एक है विज्ञान स्वरूप है सुख स्वरूप आत्मा स्वयं प्रकाश है ।

मैं केवल सत्य स्वरूप हूं मैं अहंकार को त्याग कर शेष हूं।

मैं सर्व से रहित स्वरूप हूं। मैं चिदाकाश स्वरूप अस्मि हूं। होने का बोध ही ज्ञान स्वरूप हैं (तेज वि0 3/3) जिसे तुम ज्ञान कहते हो वही आत्मा है वही अंह है। यह ज्ञान अथवा आत्मा ही सर्व विचारमय है यही सर्वभाव मय है यही सर्व कर्म क्रियामय, शक्तिमय, गतिमय है। यह ज्ञान ही हिन्दूमय मुसलमानमय ईसाईमय है यह ज्ञान ही सर्व जातिमय वर्णमय सर्व गुणामय , यही सर्व दोषमय है।

ज्ञान ही त्रिदेवमय है आत्मा ही आदि शक्ति है जिससे सब कुछ उत्पन्न हुआ है। जिससे सभी आकार प्रकाशित है जो सबका जीवन है उसे आत्मा कहते है और समस्त विश्व जिमसें है सारे ब्रहाम्ड जिमसें है उसे परमात्मा कहते है। यह चेतन आत्मा ही सभी का एक मात्र सत्याश्रय है।

यह ज्ञान ही सर्व वेदमय, शास्त्रमय है।

ईश्वर के जितने भी नाम है या रूप है वह सब ज्ञान में ही है ज्ञान ही कही राममय कही कृष्णमय सब अवतारमय है। अखण्ड ज्ञान को ही शक्ति और शक्तिमान कहा गया है।

दृष्टा साक्षी

यह भगवानके वचन है –

जिस काल में दृष्टा गुणों के सिवाएय अन्य को कर्ता नही देखता और गुणों से अति परे परम तत्व को जानता है उस काल में वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

जो साक्षी का समान स्थित है गुणो के द्वारा विचलित नही होता गुण ही गुण में वर्तते है ऐसा समझता हुआ जो परमात्मा में स्थित रहता है उस स्थिति में चलायमान नही होता है। जो निरन्तर (सम दुःख स्वस्थ) जो सवथ है अर्थात आत्मभाव में स्थित है सदा समता में दृढ़ है धैर्यवान है जो प्रिय अप्रिय में निन्दा स्तुति में मानापमान में शत्रु मित्र में सम है जो सभी आरम्भो से असंग है वही गुणावतीत है।

ज्ञान में हमें दिखाया गया है कि जीवन एक चलता हुआ चित्र की तरह है। जिस तरह तुम फिल्म के चित्रों को देखते हो फिल्म में तूफान दीखता है भीतर साक्षी रहकर देखते हो युद्ध दीखता है पर तुम भागते नही हो इसी तरह जीवन की घटनाओं को साक्षी रहकर देखते रहो ।

सन्मान अपमान तथा अनुकूल या प्रतिकूल वेदना को दृष्टा हो कर देखो, समझ लो कि मन के साथ अहंकार ही भोक्ता है मैं ज्ञान में सब देख रहा हूं मैं न कर्ता हूं न भोक्ता हूं। मैं केवल हूं लेकिन यह कुछ भी नही हूं मैं ज्ञान स्वरूप दृष्टा हूं साक्षी हूं नित्य निरन्तर चेतना हूं।

मुझ चेतन सत्ता के द्वारा मन में बैठा हुआ अहंकार ही कष्ट का पीड़ा का भोक्ता बन रहा है क्योकि यही सुख का भोक्ता है इसीलिए दुख का तथा कष्ट का भी भोक्ता है।

तुम हास्य को रूदन को भी दृष्टा होकर देखों भय को चिन्ता को अशान्ति को भोगते हुए मनोमय अहंकार को ज्ञान में देखो। अहंकार ही तनमय, धनमय, दुखमय सुखमय तथा अनेक सम्बन्धाकार बना रहता है।

गुरू कृपा से जब अहं, मन के माने हुए आकारों को छोड़ता है अर्थात अहंकार मिट जाता है तब मुक्ति का आनन्द सुलभ होता है।

आज सहस्त्रों साधक मोह, लोभ, काम क्रोध को छोड़ने का उपाय पूछते रहते है परन्तु गुरुज्ञान में सबके मूल अहंकार को नही देख पाते इसीलिए जब कीर्तन पूजा, पाठी तथा तीर्थ सेवन करते हुए भी दोषो से मुक्त नही हो पाते और आत्मा परमात्मा की भक्ति नही प्राप्त कर पाते ।

आकारों से मुक्त होकर फिर किसी अन्य का सहारा न लेना ही तो असत से मुक्त रहना है । जब अहंकार नही रहता तब जो रहता है उसे किसी अवलम्ब की आवश्यकता ही नही है। मन बिना अवलम्ब के रहता नही।

मन की मान्यतायें, धारााणायें, कल्पनायें सत्य के बोध में आवरण (पर्दा) बन रही है।

पर्दा आवरण सत्य परमात्मा पर नही है यह तो देखने वाली दृष्टि पर है दृष्टि के आगे मिथ्या जगत को दृश्य न रहे तब मन भी रहेगा । तब दृष्टा आत्मा ही रहेगा। आत्मा को किसी सहारे की अपेक्षा नही है। मनोमय अहंकार को ही अवलम्ब चाहिए।

गुरूज्ञान में यह भी हम जान रहे है कि जब तक तनबल धनबल, जनबल, तथा विद्यबल का अभिमान है अथवा जब तक त्याग का तप का एवं साुध महात्मा होने का और ज्ञान होने का अभिमान है तब तक अभिमान अहंकार उसे शत्रु मानता है जो अहंकार के अज्ञान कासे प्रकट करता है।

भीड़ के साथ चलने वाला अहंकार अनेक असत्यों को स्वीकार किये हुए है और उन असत्यों का मोही बनकर सत्य से विमुख है। यह अहंकार कभी तमोगुण को कभी रजोगुण को कभी सतोगुण को ओढ़ लेता है तब शास्त्र और सदगुरू के उपदेश का अर्थ भी गुण के अनुसार लगाता है।

सांसारिक सफलता प्राप्त करने के लिए अहंकार को अधिक से अधिक प्रशिक्षित एवं व्योहार कुशल होना चाहिए लेकिन परमात्मा के लिए तो अहंकार समाप्त होना चाहिए तभी विश्राम मिलेगा। भोग तो श्रम से मिलता है। परमात्मा का योग विश्राम में सुलभ रहता है।

गीता में तथा उपनिषद में बताया है कि यह आत्मदेव न जन्मता है न मरता है क्योकि यह अजन्मा नित्य शाश्वत है पुरातन है शरीर के नाश होने पर भी यह नही होता है।

श्रुति कहती है– एतद्विज्ञान मात्रेण ज्ञान सागर पारगः ।

इस परमात्म देव के विज्ञान मात्र से अज्ञान रूपी सागर से पार हुआ जाता है। यह स्वयं शिव पशुपति सबका आत्मा सर्वदा साक्षी है।

गीता में कहा है :–

सच्चिदानन्द घन परमात्मा में ही जिनकी बुद्धि तद्रूप है जिनकी अनन्य भाव से दृढ़ निष्ठा है जिनका मन तन्मय है अर्थात परमात्मा मय है, ऐसा परमात्मा पुरूष ज्ञान के द्वारा पाप रहित होकर परम गति को प्राप्त होता है।

यह भी भगवान का मत है कि जो पुरूष पापकार्मो में लगे है तथा मूढ़ है नरों में अधम है तथा जिनका ज्ञान माया से ढका है, जो दम्भ, पाखण्ड, दर्प आदि असुर भाव का आश्रय ले रहे है ऐसे पुरूष मुझ परमात्मा को नही भज सकते है।

ज्ञान में देखो

जो सर्वेन्द्रिय के व्यापार का प्रकाशक है तथा जो सर्वेन्द्रियों से रहित है। जो सर्व प्रभु है तथा सबका ईश्वर है जो महान है वही शरण योग्य है।

भगवान का वचन है –

जिसने अन्तः करण वश में कर लिया है वह पुरूष न तो कुछ करता हुआ और न करवाता हुआ नवद्वार वाली देह रूपी पुर में मन मसे सब कर्मो को त्यागकर आनन्द पूर्वक परमात्मा स्वरूप में स्थित रहता है।

वैसे तो माया के द्वारा जिनका ज्ञान ढका हुआ है वह जीव सम्मोहित रहते है। परन्तु जिनका अज्ञान आत्म ज्ञान द्वारा नाश हो गया है उनका सूय्र प्रकाशवत उस सच्चिदानन्द घन परमात्मा को प्रकाशता है। अर्थात परमात्मा का बोघ करता है।

आत्मा परमात्मा के बोघ की तथा अपने आत्म स्वरूप के ज्ञान की बहुत बडत्री महिमा गाई है।

जैसे प्रज्वलित अग्रि कष्ठों को भस्म कर देती है वैसी ही ज्ञान रूपी अग्रि सब कर्मो को भस्म कर देती है।

जिस पुरूष के सब कर्म काम संकल्प से रहित है तथा ज्ञानग्रि से दग्ध हो चुके है उसी पुरूष को ज्ञान जन पण्डित कहते है।

मेघों के हटते ही जिस तरह प्रकाश में आंख देखती है उसी प्रकाश अंहकार के हटते ही ज्ञान स्वरूप आत्मा के प्रकाश में शुद्ध प्रज्ञा के द्वारा दर्शन होता है।

असत से सम्बन्धित विचार विलीन होने पर आत्मा से सम्बन्ध अर्थात दर्शन का आरम्भ होता है।

एक सन्त ने बहुत ही सरल दर्शन की युक्ति बताई जीवत्मा का एक छोर देह है और दूसरा छोर परमात्मा है । बीच अहं के आकारां का बड़ा विस्तार है उसे पार करना ही पुरूषार्थ है।

परमात्मा परमात्मा ही प्रकट होते व्यक्त होते होते प्रकृति बन जाता है और प्रकृति अपने परमाश्रय में लीन होते परमात्मा हो जाती है।

अंह के आकारों से मुक्त होते ही निगुण निराकर परामत्मा की योगानुभूति होती है।

सदगुरू का निर्णय है कि अभी जितने समय तक तुम वर्तमान में ठहर सको उतने समय तक उस शान्त शून्यवस्था में जो अखण्ड है अनन्त परमात्मा तत्व है उसका बोघ होगा।

साक्षी भाव से जो कुछ भी हो उसे देखते रहो । करना कुछ भी नही है । जो निरन्तर अखण्ड सत्य है वह करने से नही मिलता बल्कि न करने पर इसका होना अनुभूत होता है।

आत्मोपनिषद में बताया गया है यह केवल अद्बतीय है अत्यन्त सूक्ष्म है ममता से रहित है निरंजन है अविद्यामल से रहित है निर्विकार है शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध से रहित है यह निगराकाक्षी सर्वव्यापी अचित्य है। यह आत्मा निष्क्रिय है उसमें संसार नही है।

एक अद्बतीय शिव शुद्ध तत्व का नाम आत्मा है। आत्मा का ज्ञान न होने का तक देहाभिमान घोर अज्ञान है। देहोहमिति संकल्पों महत् संसार उच्यते । (तेज0 पनिद)

मैं देह हूं यह जो संकल्प है सो महान संसार है। मैं देह हूं यह संकल्प ही बन्धन है। मैं देह हूं यह संकल्प महान दुखद बनता है। मैं देह हूं यह ज्ञान ही नरक कहा गया है। मैं देह हूं यह ज्ञान ही अज्ञान कहा गया है यही असत रूप है, यही असत संगत है।

देहमय बुद्धि ही अविद्या है यही द्वेत में बांधती है। जहां तक द्वेत है दूसरा है वहां तक भय नही मिटता है।

अपने अविनाशी ज्ञान स्वरूप में देह का मर जान ।तथा देह से सम्बन्धित भूमि भवन परिवार आदि को ज्ञान में रख लेना ही तो असगत संग है यही से जड़ चेतन की ग्रन्थि बन गई है।

हृदय की चेतना जड़ ई ग्रन्थि को ब्रहाकार वृति से भेदकर जीवात्मा वह स्थान पा जाता है जहां परमानन्द की अनुभूति होती है।

तेजविन्दूपनिषद में अनुभवोदगारों को देखो ?

संसार से रहित केवल चिन्मात्र है सर्व चिन्मात्र ही है सब चिन्मात्रमय ही है सब अखण्ड एक रस है। चिन्मात्र की भाना करों।

मैं परम ब्रम्हा रूप हूं मैं परमानन्द रूप हूं मैं केवल परम रूप हूं शानत रूप हूं। मैं केवल चिन्मय नित्य हूं। शाश्वत हूं।

मैं केवल सत्व रूप हूं। मैं केवल अहंकार को त्याग करके केवल ह रूप हूं । सर्व से रहित स्वरूप है। मैं चिदाकाशमय हूं मैं केवल ज्ञान रूप हूं। केवल प्रिय रूप हूं। निर्विकल्प निरीह निरामय हूं। निर्विकार हूं। अव्यय हूं। मैं अद्वेतानन्द मात्र हूं।

मैं बोघ स्वरूप एक रस हूं । मैं मोक्षानन्द एक सिन्धु हूं। सूक्ष्मातिसूक्ष्म हूं अक्षर हूं। मैं केवल आत्मा हूं।

मैं त्रिगुणातीत हूं। कुटस्थ चेतन हूं। मैं सत्ता मात्र हूं।

इस प्रकार बहुत विस्तार से चिन्मात्र बोघ का गान किया गया है यहां तो कुछ संकेत मात्र लिखा जा रहा है।

मैंत्रेयोपनिषद में कहा है कि वही सबसे उत्तम मुमुक्षु है जो तत्व वस्तु आत्मा का चिन्तन नही छोड़ता है वह मध्यम अधिकारी है जो वेदान्त शास्त्रों को चिन्तन में लगा है। वह अधम अधिकारी है। जो मन्त्र के चिन्तन में तल्लीन है और वह अघमाति अधम पुरूष है जो तीर्थाटन में व्यस्त है।

जो सिद्धि तत्व ज्ञान के लेश मात्र से होती है वह सिद्धि तप तीर्थ जप दान और दूसरे पवित्र पदार्थो से कदापि नही होती ।

जो आत्मा रूप तीर्थ को परित्याग करके बाहर तीर्थो में दर्शन स्नान करता है वह हाथ से महारत्न को छोड़कर कांच की खोज में भटकता है।

आत्मा को महान तीर्थ बताया है। जब तक चित्त दुष्ट है तब तक तीर्थ स्नान से शुद्ध नही होता । तीर्थस्नान अज्ञानी के लिए ठीक है।

शिवं पश्यति मूढ़ात्मा शिवे देहे प्रतिष्ठते।

देह में स्थित जो सदा शिव है उस शिव को मूढ़ात्मा नही देखते हैं देहासक्ति रहते हुए देव प्रतिमा में श्रद्धा होने बहुत शुभ है।

वास्तव में अज्ञान जनो में भगवद भावना जगाने के लिए प्रतिमा का सहारा लिया गया है।

अज्ञाना भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिताः

यह भी कहा है कि –

अशरीर शरीरेषु महान्त विभुमीश्वरम्

शरीर से रहित जो सत चिदानन्द परमात्म देव है सो अपने शरीर में ही व्यापक है वह आनन्दमय अविनाशी है।

इस अविनाशी सत परम तत्व का बोध शुद्ध प्रज्ञा द्वारा ही होता है । अतः सभी जन इसकमे अधिकारी नही होते ।

अधिकार भेद से शास्त्र का निर्णय है –

उत्तमा सहजावस्था द्वितीय ध्यान धारणा ।

तृतीया प्रतिमा पूजा होत यात्रा चतुर्थिका ।

विज्ञानमय पुरूष को कुछ किये बिना ही आनन्द की अनुभूति होती रहती है। वह केवल दृष्टा रहता है कर्ता नही होता । इसे ही सहजावस्था कहते हे।

सन्त ने गाया है – साधो साधना होता है अथवा नाभि के स्पन्दन में हृदय में अथवा दोनो भी के मध्य में मन लगाने का अभ्यास आवश्यक होता है।

जिनका मन ध्यान धारणा में नही लगता उन्हें प्रतिमा पूजन में मन लगाना सरल होता है। जब मन अधिक चच्वल होता है। तब धन मान के लालचवश यज्ञ करना प्रिय लगता है और जब बहुत ही जड़ बुद्धि होती है तब तीर्थ यात्रा का कष्ट सहना शुभ होता है।

इस समय की तीर्थ यात्र.ा भी भोग बन रही है। अब तीर्थ यात्रा में पुण्य बढ़ना तपस्या होनी तो सम्भव नही हैं बल्कि पहले का सच्चित पुण्य घट जाता है। प्रायः इस समय अखण्ड पाठ या जवाबी कीर्तन

अथवा कृष्णा लीला रामलीला चित की शुद्धि के साधन नही सिद्ध हो रहे है। अहंकार ही तृप्त होता है।

हमें समझाया गया है कि सन्त सदगुरू में यदि तुम श्रद्धा एवं प्रीति राखते हो तब तो अपने मन से तीर्थ व्रत दान यज्ञादि कुछ भी न करके गुरू ज्ञान में मुक्ति, भक्ति की साधना समझ लो। क्योंकि सन्त सदगुरू की उपासना का सौभाग्य प्राप्त होने पर ब्राम तीर्थ की की तथा हवन रहने की या प्रतिमा पूजन की आवश्यकता नही रह जाती ।

सन्त सदगुरू उस ज्ञान गंगसा में स्नान कराते है कि काम क्रोध लोभ मोहादि मन के सारे मल धुल जाते हे। जो श्रद्धा के होने पर भी गुरूजन से विमुख रहकर मनमुख रहते है उन्हे के मल वाहय तीर्थ स्नान से तथा यज्ञ दान से नही धुलते है तुम्हारी समझ में नही आता हो तीर्थ, व्रत तप , दान करके देख लो या करने वालो को देख लो।

यदि तुम पण्डित माने जाते हो विद्वान हो व्याख्यान देने की कला जानते हो, यदि तुम कुशल उपदेशक हो या अच्छे सुन्द रतन वाले रूपवान गुणवान भाग्यवान व्यास हो तो सावधान रहो जितना तुम्हें सम्मान या धन मिलेगा उतना ही अधिक अंहकार पुष्ट होता जायेगा और धन की मान की तृष्णा बढ़ती जायेगी तब तो विनम्रता का अभिनय मात्र होगा।

तब तुम सचेतन सदगुरू से सम्बन्धित न रहकर अहंकार के सन्तोष के लिए अचेतन चित्र को रख लोगे, नित्य आरती कर लोगे,

प्रणाम कर लोगे अथवा किसी ग्रन्थ को ही गुरू मानकर सन्तुष्ट रहोगे। जैसे कि कुछ लोग रामायण को या भागवत गीता की पोथी को गुरू मानकर मन को सन्तुष्ट करते रहते है।

यदि तुम सचेतन सदगुरू की उपासना से वंचित रहोगे तब तो तुम्हें समझाने वाला कोई न मिलेगा और तुम्हें भी समझाने की आवश्यकता प्रतीत न होगी क्योकि अपने अहंकार में ज्ञान की कमी का दुख न होगा, तब तुम दूसरों को ही समझाने में व्यस्त रहोगे इसलिए आरम्भ से ही सावधान रह सको तो आत्म देव महादेव गुरूदेव की कृपा का अनुभव कर सकोगें।

कृपा द्वारा ही तुम गुरू ज्ञान में अहंकार को देख सकोगे और अहंकार से मुक्त रहकर ही भय से, चिन्ता से अशान्ति से और दुख से छूटकर स्वतंत्र आनन्दमय हो कर दूसरों को प्रकाश दे सकोगे।

भूख प्यास प्राणों के धर्म है, शोक, मोह, काम, क्रोधादि मन के धर्म है अहं के साथ समस्त आकार मन के माने हुए है अहंकार के पार चेतन आत्मा सबका साक्षी है असंग है निर्विकार है, अविनाशी ज्ञान स्वरूप बोध स्वरूप है।

गीता 14/19-20 श्लोक को पढ़ो भगवान का निर्णय है कि तीन गुणों के परे आत्मा को जान लेने वाला दृष्टा पुरूष ब्रम्हा भाव को प्रतीत होता है जो त्रिगुणातीत है के लक्षण बताये जाते है, द्वन्द्वीत है वही ज्ञानवान मोक्ष को प्राप्त होता है।

गीता 14/22-24-25 श्लोक में गुणातीत के लक्षण बताये हैं हम अनेक जन गीता के श्लोक रट लिये है परन्तु अपने मोक्ष के लिए परमगति के लिये संसिद्धि के लिये विचार नही करते ।

ब्रम्हाविद्योपनिषत में आत्मा का सुन्दर विषद वर्णन है आत्मा सर्व का साक्षी है सर्व की बुद्धि रूपी गुहाशय में स्थित है और सर्व इन्द्रियों से प्राणों से अतीत है।

वही आत्मा जाग्रत स्वप्र सुषप्ति तीनों अवस्थाओं से अतीत में हूं सर्व को ग्रहण करने वाला में हूं मैं सर्वत्र परिपूर्ण अचिच्वदानन्द सर्व का आत्मा हूं और सभी को प्रेमास्पद मै आत्मा ही हूं।

हम गीता पढने सुनने वालो का प्रेमास्पद में आत्मा ही हूं।

हम गीता पढ़ने सुनने वालो को ध्यान से देखना चाहिए कि भगवान ने क्षर नाशमान और अक्षर जो अविनाशी है यह दो प्रकार के पुरूष को बताया गया है इनमें जो अविनाशी है यह दो प्रकार के पुरूष को बताया गया है इनमें जो सभी प्राणियों के शरीर है यह तो नाशवान है और कूटस्थ चेतन स्वरूप जीवात्मा है वह अविनाशी है । इन दोनो से उत्तम पुरूष विलक्षण ही है जो तीनों लोको में प्रवेश करके सबको धारण कर रहा है। पोषण करता है वही सदा एकरस रहने वाला अव्यय परमेश्वर परमात्मा है।

तत्ववेत्ता ज्ञान वान इसी पुरषोत्तम परमात्मा को सर्वभाव से अपने आपसे अभिन्न जानकर समग्र वृति को परमात्मा ब्राहम्य कर लेता है।

गीता के अथवा श्रुति स्मृति के एवं सदगुरू सन्त के महावाक्यों को पढ़कर सुनकर साधकों को मोक्ष चाहने वालो को अपना निरीक्षण करना चाहिए कि हमारी प्रीति में अथवा हमारी वृति में विनाशी भरा है या अविनाशी है। हमारी वृति पदार्थमय है या ब्रम्हामय परमात्मय है।

प्रायः हमारी धारण स्वीकृतियां हमारे विश्वास अत्यन्त काल्पनिक है असत्य है। मुक्ति के लिये हम साधको को अन्धी श्रद्धा से विनाशी के प्रति विश्वासों से तथा अहं को आकारो से मुक्त करना होगा ।

गुरूजन समझाते है।

चेतना ही दृष्टा है । तुम दृष्टा चेतन ही हो।

विश्राम करो । विपरीत देहाभ्यास दृढ़ हो गया है अतः आत्माज्यास दृढ़ करो।

जीवन प्रवाह में यह अहंकार भंवर के समान है। नाम रूप भरते रहना अहंकार का स्वभाव है। खाली चैतन्य का स्वभाव है।

शास्त्र में इन्द्रियों के स्वामी को मन बताया हैमन का स्वामी प्राण है। प्राणों का स्वामी नाद है। नाद में लय होने से मोक्ष मिलता है।

अनाहत चक्रय हृदयकाश की शून्यता में नाद सुना जाता है इसकमे ऊपर विशुद्ध कण्ठ चक्र अति शून्य में नाद सुनते हुए मन तल्लीन होता है।

साधक कर्ण छिद्रों को बन्द करके नाद सुनते है पन्द्रह दिन मेंही मन शानत होने लगात है।

शब्द रहित ब्रम्हा ही परमात्मा है। समस्त वृत्तियों का लय परमात्मा में ही होता है।

नादानुसन्धान, शाम्भवी मुद्रा और स्वास की गति को मन से देखते रहना योगाभिलाषी के लिए आवश्यक है।

चिच्जड़ाना तु यो दृष्टा सोच्च्युतो ज्ञान विग्रहः

स एवह महादेव सएवहि महां हरिः

जो चेतन तथा जड़ का दृष्टा है सो अच्युत ज्ञान रूप विग्रह है यही महादेव रूप है यही महाहरि है महाविष्णु है जो शिव है वही कर्म के पाश में जीव बनल जाता है और कम के धेरे के बाहर बही शिव हो जाता है। जैसे छिलके के साथ जो धान कहा जाता है छिलका टूटने पर वही चावल हो जाता है।

पाश बद्धस्त जीवाः पाशमुक्त सदाशिव।

भगवान कृष्ण ऊधव को समझाये है जब हृदय में चेतन और जड़ की ग्रन्थि टूट जाती है जब सब संशय नष्ट हो जाते है जब कर्मो का

बन्धन समाप्त हो जाता है तब चराचर में जो आत्मा है और अपने हृदय में जो आत्मा है उसमें एकता का अनुभव करता है।

भगवान ने यह भी निर्णय कर दिया है कि मूढ़ पुरूष आत्मा को नही जान पाते । जिनकी ज्ञान चक्षु खुली है वही सबके प्रकाशक आत्मा परमात्मा को देखते है।

सर्वत्र एक अखण्ड चैतन्य रूप आत्मा की ही सत्ता है।

आत्मा बिना अन्य कुछ है ही नही।

आत्मा स्वय के संकल्प को लेकर ही बांधा हुआ है।

संकल्प रहित होने पर मुक्त ही है।

सब वेदों का तात्पर्य परमात्मा हैं परमात्मा ही सर्वमय है। सर्वत्र सर्वथा वही है।

यदि अहंकार सन्यासी होता है तब मुक्त होना बहुत ही कठिन है।

आत्मदेव की कृपा से अहंकार से मुथ्कत मिल जाती है।

परम गुरू दत्तात्रेय का कथन है –

अपने का तुम ज्ञान मात्र अनुभव करो। तुम ज्ञान के विषय नही हो

तस्मात संकल्प मात्रस्य वर्तनात परतः स्थितम्

शेष शुद्ध चिते रूप स्वात्मानमुपलक्षय।

अतः संकल्प मात्र के त्याग से जो सबसे अतीत शुद्ध चेतन स्वरूप शेष रह जाता है उसी को तुम अपना आत्मा जानो ।

संकल्प त्याग के द्वारा जो शुद्ध स्वरूप में स्थिति है वही मोक्ष है। बन्धन की अस्वीकृति अथवा निवृति ही मोक्ष है।

पूर्ण चेतन का निरन्तर होते ही पूर्ण चेतन की परिपूर्णता है अभी अभी दृष्य न रहने पर जो है। ज्ञान में ही दर्शन होता है।

चेतन स्वरूप आत्मा ही अपनी स्वतंत्र शक्ति के द्वारा किसी भी संकल्पित दृष्य वस्तु के रूप में भास रहा है उससे भिन्न तो कुछ है ही नही। मन बुद्धि चित्त अहंकार भी चेतन से भिन्न नही है।

केवल शुद्ध चिदात्मा ही मनोमय है सर्वमय है।

बन्धन को सत्य मान लेनाअपना ही बनाया हुआ सर्वोपरि बन्धन है। आवरण अपनी ही कल्पना है जब से चाहो तभी चाहो तो मानते रहासे । सदविचार से मान्यता का बन्धन समाप्त हो सकता है, अन्यथा अन्य कोई देवी देवता नही हटा सकता । यदि कोई देवी देवताओ बन्धन से मुक्त करते हुए दीखेगा तो यह चेतन आत्मा ही देवतामय है। आत्मा परमात्मा से भिन्न अन्य किसी का अस्तित्व नही है।

सदगुरू सन्त, साधकों को सावधान करते है कि जब तुम्हें सत्य शान्ति आनन्द की प्यास प्रबल हो तभी आकार शून्य ज्ञान का साक्षात्कार करना आवश्यक होगा।

वहिर्मुख दृष्टि से ज्ञान का साक्षात्कार अति कठिन है।

ज्ञान स्वरूप शुद्ध चैतन्य दृश्य आकार को स्वीकार कर लेता है या अनेक रूपमय होकर असंग ही रहता है।

श्रुति का यह निर्णय है कि यदि तुम परमार्थ सिद्धि चाहते हो तो सत्पुरूष की तत्व ज्ञानी की उपासना करो। तभी आत्मदेव की कृपा से माया से छूटकर परम अद्धेत ज्ञान से अव्यय पद को प्राप्त कर सकोगें।

यह भी सत्य वचन है कि सत्पुरूष की उपासना तथा इष्ट्देव की अराधसना अगणित जन्मों के सच्चित निष्काम पुण्य से सुभी होती है। इसलिए कोई बिरले अधिकीर देखे जाते है।

भोगो से वैराग्य साधना में तत्परता सदगुरू में सात्विक श्रद्धा ज्ञान की प्यास आत्मा में ही समग्र प्रेम होना साधारण बात नही है। लाखों की जनसंख्या में दो चार हजार, हात्मा ज्ञान की साधना की चर्चा सुनते है उनमें सके कोई एक दो साधक ज्ञान के भूखे मिलते है।

निर्विकल्प चेतन ही देह रूप शव में शिव स्वरूप से विद्यमासन रहता है यह भी तत्वदर्शी ऋषि का निर्णय है –

अहं रूप से चेतन आभास ही शक्ति है इसी को जीवात्मा कहते है और विशुद्ध चिति तत्व को शिव कहते है । शुद्ध चैतन्य शिव अकर्ता है चिदाभास जीव कर्ता है।

भगवान दत्तात्रेय का निर्णय है कि प रा चिति शक्ति ही मैं या तू के रूप में भास रही है । इसकी अनुभूति तभी होती है जब आत्मदेव की कृपा से सदविचार में श्रद्धा होती है।

यथार्थ दर्शन के लिए अर्न्तदृष्टि खुले बिना अर्थात ज्ञान चक्षु खुले बिना तत्व का साक्षात्कार नही होता । संकल्प रहित होना ही अर्न्तदृष्टि खुलने का मुहुर्त है।

यह सदगुरू आदेश है कि संकल्पों का त्याग कर का आश्रय लो। अखण्डानन्द पूर्ण आत्मतत्व का दर्शन करों

दपर्ण में जिस प्रकार दृश्य देखा जाता है ऐसे ही जगत को देखो। अखण्डानन्द पूर्ण आत्म तत्व में बुद्धि स्थिर करो।

देखों ? अभी चैतन्य से ही देह मन आदि की गति चल रही है। अनन्त शक्ति ही चेतन का स्वरूप है । सर्वसाक्षी चेतन तत्व ही ह। यही ज्ञान स्वरूप हैं यही सबमेमं सत्तामय है।

वसिष्ठ जी कहते है चिति परमतत्व में संकल्प उठा उसी से प्रतिबिम्ब रूप जगत भासने लगा है।

चेतन आत्मा से भिन्न जगत की सत्ता मिलती ही नही ।

जो निरन्तर है के रूप ममें भासमान है वही माहेश्वरी चिति शक्ति है इस अविनाशी चेतन शक्ति को न जान `के कारण हाड़ मास

की विनाशी देह ही अपनी प्रतीत होती है। मैं देह ही हूं – ऐसा निश्चय हो रहा है।

अज्ञानवश अविनाशी चेतन आत्मा, नित्य शुद्ध निर्मल आत्मा में नित्य अशुद्ध विनाशी जड़ देह को मिलाकर मैं यह देह हूं यह देह मेरी है ऐसा मानते हुए करोड़ो जीव मर रहे हैं कोई ज्ञान में देखते हुए पुरूष ही इस असत जड़ देह के बन्धन से मुक्त होते है

नित्य अविनाशी चेतन आत्मा सभी भूतों में सभी पदार्थो में सत्ता रूप में गतिदाता के रूप में, चेतना के रूप में तथा अहं बोध के रूप में विद्यमान है परन्तु सभी प्राणी इसे नही जानते । इस व्यापक आत्म तत्व को सूक्ष्म बुद्धि सम्पन्न श्रद्धावन पुरूष सदगुरू के उपदेश से जान पाते है।

लोभी, कामी, क्रोधी मोही सुखासक्ता असतसंगी अहंकार इस सर्व साक्षी, सर्व दृष्टा निर्विकार त्रिगुणातीत नित्य मुक्त आत्मा को नही । जान पाता और आत्मा के बोध में असतसंगी अहंकार ही बाधक बना रहता है।

आत्मा निष्फल है, अंग अवयव रहित है और देह में अनेक अंग है। आत्मा अनन्त स्थिर है आगर प्रेरक है लेकिन दउेह वाहा दृश्य है प्ररित होती है आत्मा ज्ञानमय है पवित्र है और देह अस्थि, मास रूधिर, चर्बी आदि द्रव्यों से बनी हुई है अपवित्र है आत्मा सर्व का प्रकाशक अर्थात सब ज्योतियो को ज्योति देने वाला है अविधा मल से रहित है

स्वच्छ है लेकिन देह जड़ है चेतना से ही गतिशील है मलिन होती रहती है आत्मा नित्य एक रस है देह अनित्य है क्षण क्षण बदलते रहे वाली है । आत्मा सब है, चेतन है और दहे असत है जड़ है । जो देह को ही मैं और मेरी मानते है वह बहुत उच्च विद्वान होने पर भी असत संगी है अज्ञान में है।

मनुष्य में जो परमात्मा की शक्ति है वही पदार्थ के संग से तदाकार होकर वृति बन जाती है पदार्थमय वृत्ति ही सत परमात्मा से विमुख होकर असत संगी होती है, वही वृति असत पदार्था के परिवर्त नसे या उनके सम्बन्ध विच्छेद होने पर अथवा विनाश होने पर दुख का कारण बनती है। उसी नित्य रहने वाली शक्ति की पदार्थमय वृत्ति को ब्रम्हमय अथवा आत्मा परमात्मय कर लेने पर वियोग के दुख से तथा हानि के दुख से एवं अभाव के दुख से मुकित मिल जाती है। इसीलिए तेज बिन्दूपनिषाद में कहा है कि जो पुरूष परम पवित्र तथ सर्वोत्कृष्ट ब्रम्हाकार वृत्ति का परित्याग करता है वह पशुवत जीवन व्यतीत करता है। पशुवत वही है जिसकी वृत्ति देहमय है।

जो पुरूष ब्रम्हाकार वृत्ति के स्वरूप को जानता है तथ जान कर ब्रम्हाकार वृत्ति की वृद्धि करता है और निर्विकल्प समाधि में स्थित होता है वही ब्रम्हानिष्ठ बन्दनीय है। ब्रम्हाकार वृत्ति पूर्ण परिक्व होने पर ही महात्मापद प्राप्त होता है केवल वाणी से अहं ब्रम्हास्मि, शिवोहम कहने मात्र से महतपद की प्राप्ति नही होती ।

कुशलता ब्रम्हावार्तया वृत्ति हीन सुरागिणः ।

ते प्य ज्ञान तयानून पुनरायांति यान्ति च।

जो पुरूष ब्रम्हाकार वृत्ति से रहित है और ब्रम्हापना वाणी मात्र से प्रगट करता है अर्थात जो ब्रम्हा ज्ञान चर्चा करने में कुशल है ऐसे वक्त, ज्ञानी उपदेशक को मुक्ति नही मिलती है।

मनुष्य की वृत्ति जिस वस्तुमय या व्यक्ति मय अर्थात विनाशी प दार्थकार होती है मनुष्य को उसी की प्राप्ति होती है। जिसकी वृत्ति शून्याकार होती है उसे शून्य की अनुभूति होती है और जिसकी वृत्ति ब्रम्हाकार होती है उसे ही शरीर त्याग के पश्चात ब्रम्हा की प्राप्ति होती है।

विनाशी पदार्थो को प्रीतिपूर्वक अपना मानने से तदाकार वृत्ति बन जाती है। भगवान को प्रीतपूर्वक अपना मानने से भगवदाकासर वृत्ति होती है। देह को अपना मानने से देहकार वृत्ति रहती है इसी प्रकार ब्रम्हातत्व से एकता की अनुभूति में ब्रम्हाकार वृत्ति दृढ़ हो जाती है। ब्रम्हाकार वृत्ति होने पर शोक मोह का अवसर नही आता है। देहाकार वृत्ति तथा विनाशी नाम रूपाकार वृत्ति के कारण ही मनुष्य मोही, लोभी अभिमानी वन कर दुख भोगता है।

यादव ध्याने सजह संदृश जायते नैव तत्व।

तावज्ज्ञान वदति दम्भ मिथ्या प्रलाप ।

जब तक प्राण स्थित नही होता तथा प्राण के स्थिर होने पर जब तक बिन्दु दृढ़ नही होता। जब तक ध्यान में परमात्मा वृत्ति नही होती तब तआत्मा के ज्ञान का कथन दम्भूपर्ण मिथ्या प्रजाप मात्र है।

सदगुरू का निर्णय है कि पर में रमण करना छोड़ कर आत्मरमण करो इससे चित्त शान्त होगा।

किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा शब्द, स्पर्श, रसास्वाद को सुखद मानकर उसी का संयोग चाहना पर रमण है।

सदगुरू अष्टावक्र ने बताया है कि विषयों को विष समझते हुए त्याग करो और क्षम करो सरलता को अथवा विनम्रता को दया को सन्तोष को और सत्य को अमृत जान कर सेवन करों इससे अवश्य मुक्ति होगी।

बार बार मनन करो मैं शुद्ध चैतन्य मात्र हूं। ज्ञान ही हमारा स्वभाव है। अपने आप में नित्य निरन्तर सच्चिदानन्द ही हूं। इस स्वरूप की विस्मृति हो रही है। अब निरन्तर स्मृति रहनी चाहिए।

बार–बार स्मरण करो मैं निरपेख साक्षी हूं । मैं अचल हूं अमर हूं अव्यय हूं अक्षर हूं त्रिगुणातीत हूं केवल एक सिन्धु रूप ही हूं। सूक्ष्म हूं अक्षर हूं त्रिगुणातीत हूं केवल चेतन आत्म रूपरूप हूं निर्मल निर्गुण हूं कला रहित हूं।

निरवयव हूं निर्वाण मूर्ति हूं। केवल सदमात्र सारभूत हूं। मैं शुद्ध एक रस व्यापक विज्ञान स्वरूप आत्मा हूं। (आत्माबोधे प0)

वासना के रहते चित्त शान्त नही होता । चित्त के शान्त हुए बिना आत्मा साक्षात्कार नही होता।

तत्व ज्ञान हुए बिना अथवा सत्योपासना बिना वसना का क्षय नही होता

वाराह भगवान का उपदेश है मुझ चिदाकाश का ही चिन्तन करों, मुझे चिन्मात्र तत्व का ही परस्पर कथन करो मुझ व्यापक चैतन्य का ही उपदेश करो।

संसार एक मात्र चेतन सत्ता ही है, तुम चिन्मात्र ही हो। यह सब चिन्मात्र ही हैं ऐसा दर्शन करो।

मैं देह हूं उच्च कुलीन हूं या मै नीच हूं इत्यादि असत संग के अभ्यास को मिटाने के लिए मैं सत चेतन हूं अंह ब्रहास्मि, मन्त्र का अभ्यास करों।

तुम नित्य सत चेतन हो चित्त द्वारा जिसका बार बार चिन्तन करते हो उसी मय बन जाते हो । तुम सत ही असतमय बन रहे हो।

अहं ब्रहास्मि के चिन्तन, मनन–मनन ध्यान से बुद्धि की तथा मन की आधि व्याधि उपाधि नष्ट होती है।

अहं ब्रहस्मि अयंमात्मा ब्रम्हा मन्त्र के प्रभाव से अनात्मा रूपी असुर नष्ट होते है। मोक्ष की प्राप्ति होती है।

स्कन्ध पुराणा में कहा है कि मनन करो, है ही सर्व जगत रूप हूं मुझसे भिन्नकोई भी वस्तु नही है यही सर्वातम्भाव को दृढ़ करने की साधना है। सब वेदों का परमात्पर्य यही है इसमें संशय न करना।

अज्ञानी अहंकार का यही दृढ़ निश्च होता है कि मैं देह ही हूं वह देह के रंग को अपना काला गोरा रंग बताता है दह की जाति को या देह के नाम को अपनी जाति, अपना नाम मानता है उसी प्रकार तत्व ज्ञानी अपने को देह से भिन्न अपने को नित्य अविनाशी चेतन स्वरूप परमात्मा से निरन्तर युक्त आत्मा जानता है। भिन्न नही मानता । तत्वदर्शी ऋषि कोटि ग्रान्थो का सार आधे श्लोक में बताये है ब्रम्हा सत्य जगन्मिथ्या ब्रम्हा सत्य है जगत मिथ्या है और यह जीव ब्रम्हा रूप ही है।

बहुत ही अनोखी अदभुत दिशा सदगुरू भगवान दिखाते है सावधान होकर जो कोई समझ सको समझ लो।

अनन्त ब्रम्हा से संसार में आने का द्वारा और संसार से ब्रम्हा में लौटने का द्वारास एक ही है उस द्वार की ही अहं द्वार कहते है।

ब्रम्हा से उदभूत चेतन ज्ञान किरण अहं बोध के रूप में प्रस्फुट्ति हुई द्वार के बाहर होते ही आकार में फैलती गई । आकार ही संसार

के विस्तार में परिणात हो गया । असत की परिधि में सम्मोहित भ्रमित अहंकार अपने उदगम को अपने आश्रय को भूल ही गया।

आकारों को धारण करने वाला ज्ञान स्वरूप अहं दुखाघातों से व्याकुल होकर आनन्द की प्यास लेकर अनन्त के समक्ष मौन प्रार्थी बना तभी कपा किरण के सहारे संसार के विस्तार से लौटना आरम्भ हुआ । विस्तार से समिट कर आकारों की सीमा में आया और आकारों की सीमा को छोड़ते छोड़ते हुए अंह केन्द्र में स्थित हुआ । अहं ही वह द्वार है बहुत ही संकीर्ण द्वार है जिसयमें एक के सिवा दूसरा कुछ प्रवेश कर ही नही सकता इस द्वार में व्हरते ही एक ओर विराट ससांर दीखता है दूसरी ओर देखते ही मान ब्रम्हा का बोध होता है तभी यह अहंज्ञान जो कि द्वार के बाहर आका रज जगदाकार बन रहा था वही द्वार के भीतर लौट कर ब्रम्हाकार हो जाता है और वही उदघोष करता है। अहं ब्रम्हास्मि अहं ब्रम्हास्मि आनन्द ब्रम्हा।

जिसमें सारा जगत भास रहा है। वह ब्रम्हा ही सत्य है और भासमान जगत मिथ्या है केवल इतना ही छोटा सा मन्त्र जिनकी शुद्ध प्रज्ञा में दीख जाता है उन्हें कुछ और करना शेष नही रहता ।

शुद्ध बुद्धि द्वारा ही जो सत्य या झूठ है वह जाना जाता है और प्रज्ञा द्वारा दर्शन होता है।

बुद्धि नष्ट भ्रष्ट रहने तक पतन का विनाश का दुख भोगना होता है और बुद्धि होने पर प्रज्ञा में प्रतिष्ठित परम सत्य का बोध होता है।

भगवान का नाम स्मरण कीर्तन तथा धारणा, ध्यान के द्वारा मन भगवानमय हो जाये, चित्त चिन्मय तथा बुद्धि शुद्ध हो जाये और ब्रम्हा सत्य है जगत मिथ्या है यह दृढ़ निश्चय हो जाये तब तो फिर कुछ करना शेष नही रहता ।

परम शान्ति परम विश्राम परम पद की अथवा अव्यय पद की या निर्वाण की अनुभूति होती रहती है यही गुरू निर्णय है की या निर्वाण की अनुभूति होती रहती है यही गुरू निर्णय है।

आत्मदेव की कृपा से ही सब कुछ सम्भ है।

श्रद्धा की कृपा से ही सब कुछ सम्भव है।

श्रद्धा समपर्णय तत्वज्ञान तथा मुक्ति, मुक्ति परम शान्ति मोक्ष, निर्वाण जो कुछ भी सुलभ होता है जब आत्मादेव की कृपा से ही होता है हम सब इसी परमदेव के उपासक हो।

ऊँ आनन्द आनन्द आनन्द

मन से जो माना था

बुद्धि से जाना और

प्रज्ञा से देखा ।